आचार्य श्री वसुनंदी मुनि कृत

कम्म-सहावो

(कर्म स्वभाव)

ग्रंथ :

कम्म-सहावो (कर्म-स्वभाव)

मंगल आशीर्वाद :

प.पू. सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य श्री 108 विद्यानंद जी मुनिराज

ग्रंथकार :

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108 वसुनंदी जी मुनिराज

सम्पादन :

आर्यिका वर्धस्वनंदनी

संस्करण : प्रथम (सन् 2022)

प्रतियाँ : 1000

ISBN : 978-93-94199-24-8

मूल्य : सदुपयोग

प्राप्ति स्थान :
ई-16, सैक्टर-51 नोएडा (गौतमबुद्ध नगर) 201301
मो. 9971548899, 9867557668

ईस्टर्न प्रेस
नारायणा, नई दिल्ली-110028

सम्पादकीय

यह तो सर्वमान्य सिद्धान्त है ही कि संसार में कोई भी कार्य बिना कारण के नहीं होता। कारण का प्रभाव कार्य में दृष्टिगोचर होता है। जैन दर्शन में कारण के दो भेद कहे हैं–एक वह कारण जो स्वयं कार्य रूप परिणत है अर्थात् उपादान कारण एवं दूसरा वह जो उसे कार्य रूप परिणत करने में सहयोगी बने अर्थात् निमित्त कारण। इन दोनों प्रकार के कारणों को विषयवस्तु स्पष्ट करने के लिए दो भेद करके समझा जा सकता है।

निमित्त कारण के दो भेद–अंतरंग निमित्त कारण व बहिरंग निमित्त कारण। उसी प्रकार उपादान कारण के दो भेद हैं–त्रैकालिक उपादान कारण व तात्कालिक उपादान कारण। उदाहरण के लिए–यदि मिट्टी का कलश बनाना है तो मिट्टी में कलश बनने हेतु त्रैकालिक उपादान है। किन्तु अभी कंकड–पत्थरादि से युक्त होने से कलश नहीं बन सकता। मिट्टी को छानकर जल में भीगी होने पर अब वह कलश बनने हेतु पूर्ण तैयार है यह है मिट्टी का तात्कालिक उपादान। कुंभकार व उसके उपकरण बहिरंग निमित्त कारण हैं। इनके द्वारा उपादान में किया गया प्रयोग जो बाहर दिखाई नहीं दे रहा किन्तु उपादान कारण को कार्य में परिवर्तित कर रहा है वह अंतरंग निमित्त कारण है यथा कुंभकार का श्रम।

भव्य जीव में सम्यक्त्व प्राप्त करने की सामर्थ्य है, यह त्रैकालिक उपादान कारण है। जीव संज्ञी, पंचेन्द्रिय, पर्याप्तक, ज्ञानोपयोग की धारा युक्त होना तात्कालिक उपादान कारण है। वीतरागी देव, निर्ग्रन्थ गुरु व शास्त्र बहिरंग निमित्त हैं।

इनके द्वारा विशुद्धि बढ़ने पर दर्शन मोहनीय का उपशम, क्षय, क्षयोपशम होना अंतरंग निमित्त कारण है।

जीव में कर्मों से बंधने की सामर्थ्य है और कार्माण वर्गणाओं में कर्म रूप परिणत होने की सामर्थ्य है। जीव के राग-द्वेषादि विकारी भावों को प्राप्त कर वे कर्म रूप परिणत हो जाती हैं। यद्यपि प्रत्येक कार्माण वर्गणा ज्ञानावरणादि किसी भी एक कर्म में परिणत हो सकती हैं किन्तु उन कार्माण वर्गणाओं को जिस प्रकार के प्रत्यय प्राप्त होते हैं वे उस रूप परिणत होती हैं। पुद्गल में आत्मा को बांधने का त्रैकालिक उपादान होने पर भी यदि वह पुद्गल कार्माण वर्गणा रूप परिणत नहीं हुआ है तो आत्मा के रागद्वेषादि विकारी भावों का निमित्त पाकर भी कर्म रूप परिणत नहीं होगा।

दूसरी अपेक्षा से देखा जाए तो विभाव युक्त आत्मा में कर्मों से बंधने की सामर्थ्य है। कार्माण वर्गणाओं को प्राप्त कर, पूर्व कर्मों के उदय व वर्तमान के सम्यक्-मिथ्या पुरुषार्थ के बल से ही वह आत्मा बंधने में समर्थ होती है। हर विभाव युक्त आत्मा में कर्मों को बांधने का सामर्थ्य है किन्तु हर आत्मा हर समय हर प्रकार के कर्म को नहीं बांध सकती। उस आत्मा में जिस समय जिस-जिस प्रकार की परिणति हो रही है उस समय वह जीव उसी प्रकार का कर्म बंध कर सकेगा।

जैसे मिथ्यादृष्टि भव्य जीव में सर्व कर्म बंध का त्रैकालिक उपादान सामर्थ्य होने पर भी वह सम्यक्त्व के अभाव में तीर्थंकर प्रकृति, आहारकद्विक का बंध नहीं कर सकता। इसी प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्व की अविनाभावी 16 प्रकृति व सासादन की 25 प्रकृतियों का बंध नहीं कर सकता। अतः जीव में कर्म बंध का सामर्थ्य त्रैकालिक उपादान है एवं

सम्यक्त्व व मिथ्यात्व के होने पर बंध होना तात्कालिक उपादान कारण है। कर्म रूप बंधने योग्य कार्माण वर्गणाओं के न मिलने पर जीव बहिरंग निमित्त एवं कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले अंतरंग निमित्त न मिलने पर वह विभावी आत्मा कर्म का बंध न कर सकेगी।

प्रस्तुत ग्रंथ **'कम्मसहावो'** में द्रव्य कर्म, भावकर्म व नोकर्म की संक्षिप्त व्याख्या है। जीव व कर्म का संबंध अनादि से है। जीव के जिन राग-द्वेषादि भावों से कर्म द्रव्य आत्मा की ओर आकृष्ट होता है वे भाव भावकर्म हैं एवं उन कार्माण वर्गणाओं का आत्मा के साथ बंध जाना, वह अचेतन कर्म द्रव्य द्रव्यकर्म है। एवं तीन शरीर व 6 पर्याप्तियाँ नोकर्म है। ये कर्म भी पुद्‌गल है। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण युक्त पुद्‌गल होता है। यह पुद्‌गल का लक्षण भी है और स्वभाव भी क्योंकि स्पर्शादि का पुद्‌गल में से कभी अभाव नहीं होता अतः वह उसका स्वभाव भी है।

पुद्‌गल द्रव्य की ग्राह्य-अगाह्य रूप से 23 प्रकार की वर्गणाएँ जैन सिद्धान्त में बतलायी गयी हैं, उनमें से जो कर्म और नोकर्म वर्गणाएँ हैं, उन्हें यह जीव योग व कषाय के माध्यम से उसी प्रकार अपनी ओर खींचता है जैसे अग्नितप्त लोहे का गोला पानी में डाले जाने पर पानी को चारों ओर से अपनी ओर खींचता है। इनमें से कार्माण वर्गणाएँ कर्म रूप व नोकर्म वर्गणाएँ शरीर रूप परिणत होती हैं।

जब कार्माण वर्गणाएँ कर्म रूप परिणत हो जाती हैं तो उनमें चार प्रकार का स्वभाव आ जाता है। जीव के योग से प्रकृति व प्रदेश एवं कषाय से वा रागद्वेषादि परिणामों से उनमें स्थिति व अनुभाग पड़ती है। एक ही कर्म चार प्रकार की शक्ति से

युक्त है। वह कार्माण वर्गणा जो पुद्गल स्कंध कर्म रूप परिणत हुआ उसका प्रदेशत्व (प्रदेश संख्या), ज्ञानावरणादि रूप उसकी प्रकृति, नियत काल तक आत्मा के साथ रहना स्थिति व फल देने की शक्ति अनुभाग है।

कर्म के मूल भेद, उत्तर भेद व प्रकृति, प्रदेश स्थिति व अनुभाग इन चार प्रकार के बंधों का कथन परम पूज्य आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज ने प्रस्तुत **'कम्म-सहावो'** नामक ग्रन्थ के अन्तर्गत बहुत सरल शब्दों में किया है। उन्होनें प्रत्येक कर्म प्रकृति का स्वभाव बताया है व बंध के कारणों का स्थूल कथन किया है। इनका सूक्ष्म कथन प्रत्यक्षज्ञानी के अभाव में असंभव है।

श्रुत का आलंबन लेकर गुरु की शिक्षा के आधार से एवं युक्ति, तर्क व अनुभव की कसौटी पर कसते हुए आचार्य श्री ने यहाँ कर्म बंध के प्रत्यय बताए हैं, वह श्रावकों के यथार्थ बोध का कारण तो है ही साथ में भवभीरुता का भी कारण है। जीव कर्म सिद्धान्त का अध्ययन कर संसार-शरीर-भोगों की यथार्थता जान विरक्ति का आलंबन लेता है। एक ओर कर्म सिद्धान्त का ज्ञान भवभीरुता, दु:ख विरक्ति, वैराग्य व निर्वेग का कारण है तो वहीं कर्म शास्त्र का ज्ञान चेतना के लिए सुसमर्थ आलंबन है।

कर्म सिद्धान्त के सम्यक् अवबोध से ही जीव सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चारित्र, सम्यक् वैराग्य, सम्यक् तत्त्व चिंतन, सम्यक् तप, सम्यक् ध्यान में स्थिर हो जाता है। अत: कर्म सिद्धांत का अवबोध संसार गर्त, भोगों की दलदल, विषयों की आसक्ति और देह के तीव्र अनुराग से छुड़ाकर उत्तम

दशा की ओर ले जाता है तो दूसरे शब्दों में यही कर्म सिद्धान्त का बोध भव्य जीव के लिए मोक्षमार्ग का निर्माण भी करता है।

कर्म सिद्धान्त के माहात्म्य को ग्रन्थकार ने इस प्रकार लिपिबद्ध किया है–

कम्मणाणचक्केणं, पंचिंदियं च अणिंदियं णाणी।
जह जयदि सगचक्केण, छक्खंडं तह चक्कवट्टी।।581।।

जैसे चक्रवर्ती अपने चक्र से षट्खंडों को जीतता है उसी प्रकार कर्म के ज्ञान रूपी रूक्र से ज्ञानी पाँच इंद्रिय व मन रूपी छः खंडों को जीत लेता है।

कम्मसहावणाणेण, विणा विरज्जिदुं भव-तण-भोयादु।
जीवो ण सक्कदि को वि, तं पढदु जाणदु सद्धाए।।586।।

कर्म स्वभाव के ज्ञान के बिना जीव संसार, शरीर, भोग से विरक्त होने में समर्थ नहीं होता इसलिए श्रद्धा से उसे पढ़ना चाहिए व जानना चाहिए।

प्रस्तुत कर्म सिद्धान्त के इस सुगम ग्रंथ **'कम्म-सहावो'** को **परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज** ने स्वपर हितार्थ लिखा है। यह सुबोध ग्रंथ हम अपनी लघु प्रज्ञा के माध्यम से संपादित करने एवं ग्रंथकार के भावों को आप तक पहुँचाने में कितने सफल हुए हैं इसका निर्णय आप सुधीजन ही कर पाऐंगे।

सभी श्रद्धालु सुधी पाठकों से हमारा इतना ही अनुरोध है कि आप इस ''कम्मसहावो'' (कर्म स्वभाव) ग्रन्थ रूपी क्षीरोदधि में से हंसवत् गुणग्राहक दृष्टि बनाकर क्षीर रूपी गुण ग्रहण करने का सम्यक् पुरुषार्थ करें। यदि कोई शब्द आपको सारहीन प्रतीत हो तो हंसवत् जल के समान उसका परित्याग

कर दें। किन्तु अपनी दृष्टि कदाचित् व कदापि भी दोषग्राही न बनाएँ क्योंकि जो जिसका अर्थी होता है वह अपने सम्यक् पुरुषार्थ के बल से उसे प्राप्त कर ही लेता है। वही सूर्य कमल पुष्पों को विकसित करने में कारण होने से पद्मबंधु कहलाता है और वही सूर्य अंधकार का शत्रु होने से तमोअरि भी कहलाता है। यह ग्रंथ गुणग्राही के लिए वरदान स्वरूप व दोषग्राही के लिए अभिशाप रूप भी हो सकता है।

परम पूज्य गुरुदेव की असीम कृपा से ही इस वृहद् कार्य को संपन्न किया जा सका। गुरुवर श्री का संयम पथ सदैव आलोकित रहे। शताधिक वर्षो तक यह वसुधा गुरुवर श्री के तप, ज्ञान, साधना से सुरभित रहे। परमपूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, अक्षर शिल्पी आचार्य गुरुवर श्री वसुनंदी जी मुनिराज के चरणों में सिद्ध-श्रुत-आचार्य भक्ति सहित कोटिशः नमोस्तु! नमोस्तु! नमोस्तु!

श्री शुभमिति अश्विन कृष्ण अमावस्या ॐ ह्रीं नमः
श्री वीर निर्वाण संवत् 2548 **आर्यिका वर्धस्वनंदनी**
श्री 1008 शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर
आहूरा नगर, सूरत

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	गाथा सं.	पृष्ठ सं.
1.	मंगलाचरण	1	1
2.	सिद्ध स्तुति	2	1
3.	ग्रंथ निरूपण प्रतिज्ञा	3-4	1
4.	संसार का हेतु	5	2
5.	अशुद्ध जीव स्वभाव	6-7	2
6.	संसारी व सिद्ध लक्षण	8-9	2
7.	कर्म प्रकृति भेद	10-12	3
8.	कर्म मूल भेद	13-14	3
9.	नोकर्म भेद	15	4
10.	भावकर्म भेद	16	4
11.	उत्तर भेद	17	4
12.	घातिया व अघातिया कर्म	18	4
13.	अनुजीवी व प्रतिजीवी गुण	19-22	5
14.	बंध भेद	23	5
15.	प्रकृति बंध	-	6
16.	ज्ञानावरण कर्म स्वरूप व भेद	24	6
17.	मतिज्ञानावरण स्वरूप	25	6
18.	श्रुतज्ञानवरण स्वरूप	26	6
19.	अवधिज्ञानावरण स्वरूप	27	6
20.	मन:पर्यय ज्ञानावरण स्वरूप	28	7
21.	केवलज्ञानावरण स्वरूप	29	7
22.	दर्शनावरण कर्म स्वरूप	30-32	7

23. दर्शनावरण भेद 33-34 8
24. चक्षु दर्शनावरण स्वरूप...................35-36 8
25. अचक्षु दर्शनावरण स्वरूप.................37-38 8
26. अवधि दर्शनावरण स्वरूप.................39 9
27. केवल दर्शनावरण स्वरूप 40 9
28. स्त्यानगृद्धि स्वरूप...........................41 9
29. निद्रा-निद्रा स्वरूप...........................42 9
30. प्रचला-प्रचला स्वरूप.......................43 10
31. निद्रा स्वरूप 44 10
32. प्रचला स्वरूप..................................45-46 10
33. मोहनीय कर्म स्वरूप.........................47-48 11
34. मोहविजयी को नमस्कार....................49 11
35. मोहनीय के भेद...............................50 11
36. दर्शन मोहनीय भेद...........................51 11
37. मिथ्यात्व स्वरूप...............................52 12
38. मिथ्यात्व के भेद...............................53-54 12
39. एकांत मिथ्यात्व स्वरूप......................55 12
40. विपरीत मिथ्यादृष्टि स्वरूप 56 13
41. संशय मिथ्यादृष्टि स्वरूप...................57 13
42. अज्ञान मिथ्यादृष्टि 58 13
43. वैनयिक मिथ्यादृष्टि..........................59 13
44. सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति स्वरूप 60-61 13
45. सम्यक्त्व प्रकृति स्वरूप.....................62 14
46. कषाय का स्वरूप.............................63 14
47. कषाय के भेद..................................64-65 14
48. कषाय विपाक में हीनाधिकता.............66 15

49. नोकषाय स्वरूप..............................67........................15
50. नोकषाय भेद..................................68........................15
51. अनंतानुबंधी कषाय..........................69-71..................15
52. अप्रत्याख्यान कषाय ....72-73..................16
53. प्रत्याख्यान कषाय............................74-75..................16
54. संज्वलन कषाय ....76-81..................17
55. हास्य नोकषाय स्वरूप.....................82........................18
56. रति नोकषाय स्वरूप.......................83........................18
57. अरति नोकषाय स्वरूप.....................84........................19
58. शोक नोकषाय स्वरूप.....................85........................19
59. भय नोकषाय स्वरूप.......................86........................19
60. जुगुप्सा नोकषाय स्वरूप..................87........................19
61. स्त्रीवेद स्वरूप................................88........................19
62. पुरुषवेद स्वरूप...............................89........................20
63. नपुंसकवेद स्वरूप............................90........................20
64. अंतराय कर्म स्वरूप.........................91........................20
65. अंतराय कर्म भेद ....92........................20
66. दानांतराय कर्म स्वरूप.....................93-94..................21
67. लाभांतराय कर्म स्वरूप....................95........................21
68. भोगांतराय कर्म स्वरूप....................96-97..................21
69. उपभोगांतराय कर्म स्वरूप................98........................22
70. वीर्यान्तराय कर्म स्वरूप...................99........................22
71. वेदनीय कर्म स्वरूप.........................100......................22
72. असाता वेदनीय स्वरूप.....................101-102.............22
73. साता वेदनीय स्वरूप.......................103-104.............23
74. गोत्र कर्म स्वरूप ....105......................23

75. नीच गोत्र स्वरूप............................106 23
76. उच्च गोत्र स्वरूप...........................107 23
77. आयुकर्म स्वरूप व भेद....................108-109.............24
78. नरकायु स्वरूप...............................110 24
79. तिर्यंचायु स्वरूप.............................111 24
80. मनुष्यायु स्वरूप.............................112 24
81. देवायु स्वरूप.................................113 25
82. नाम स्वरूप....................................114 25
83. नाम कर्म भेद ....115-118.............25
84. गति नाकर्म स्वरूप व भेद...............119-120.............26
85. नरकगति स्वरूप.............................121 26
86. तिर्यंचगति स्वरूप...........................122 27
87. मनुष्यगति स्वरूप...........................123 27
88. देवगति स्वरूप...............................124 27
89. जाति नाकर्म स्वरूप व भेद.............125 27
90. एकेन्द्रिय जाति स्वरूप......................126 28
91. द्वीन्द्रिय जाति स्वरूप.......................127 28
92. त्रीन्द्रिय जाति स्वरूप.......................128 28
93. चतुरिन्द्रिय जाति स्वरूप...................129 28
94. पंचेन्द्रिय जाति स्वरूप.....................130 28
95. शरीर नामकर्म स्वरूप......................131 29
96. शरीर नामकर्म भेद..........................132 29
97. औदारिक शरीर स्वरूप.....................133-134.............29
98. औदारिक शरीर भेद 135 29
99. औदारिक शरीर स्वामी.....................136 30
100. वैक्रियक शरीर स्वरूप.....................137-138.............30

101. आहारक शरीर स्वरूप......................139–142..............30
102. तैजस शरीर स्वरूप..........................143–144..............31
103. कार्माण शरीर स्वरूप.......................145–146..............31
104. बंधन नाकर्म स्वरूप........................147.......................32
105. औदारिक शरीर बंधन स्वरूप...........148.......................32
106. वैक्रियक शरीर बंधन स्वरूप...........149.......................32
107. आहारक शरीर बंधन स्वरूप............150–151..............32
108. तैजस शरीर बंधन स्वरूप.................152.......................33
109. कार्माण शरीर बंधन स्वरूप..............153.......................33
110. संघात नामकर्म स्वरूप......................154.......................33
111. संघात नामकर्म भेद..........................155.......................33
112. औदारिक संघात स्वरूप....................156.......................34
113. वैक्रियक संघात स्वरूप.....................157.......................34
114. आहारक संघात स्वरूप.....................158.......................34
115. तैजस संघात स्वरूप.........................159.......................34
116. कार्माण संघात स्वरूप......................160.......................35
117. अंगोपांग नामकर्म स्वरूप.................161.......................35
118. औदारिक शरीर अंगोपांग स्वरूप.......162.......................35
119. वैक्रियक शरीर अंगोपांग स्वरूप........163.......................35
120. आहारक शरीर अंगोपांग स्वरूप........164–165..............35
121. निर्माण नामकर्म स्वरूप व भेद.........166.......................36
122. संस्थान नामकर्म स्वरूप...................167.......................36
123. संस्थान नामकर्म भेद.......................168.......................36
124. समचतुरस्र संस्थान स्वरूप................169.......................36
125. न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान स्वरूप.........170.......................37
126. स्वाति संस्थान स्वरूप......................171.......................37

127. कुब्जक संस्थान स्वरूप....................172......................37
128. वामन संस्थान स्वरूप......................173......................37
129. हुंडक संस्थान स्वरूप.......................174......................38
130. अशुभ संस्थान...............................175......................38
131. संहनन स्वरूप ....176......................38
132. संहनन के भेद ....177-178..............38
133. वज्रवृषभनाराच संहनन स्वरूप..........179......................39
134. वज्रनाराच संहनन स्वरूप.................180......................39
135. नाराच संहनन स्वरूप.......................181......................39
136. अर्द्धनाराच संहनन स्वरूप.................182......................39
137. कीलक संहनन स्वरूप.....................183......................40
138. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन स्वरूप......184......................40
139. संहनन का सद्भाव.........................185......................40
140. वज्रवृषभनाराच संहनन का महत्त्व......186......................40
141. स्त्रियों के संहनन............................187......................40
142. संहनन का अभाव...........................188......................41
143. स्पर्शनामकर्म स्वरूप व भेद.............189-190..............41
144. कर्कश स्वरूप................................191......................41
145. मृदु स्वरूप....................................192......................41
146. गुरु स्वरूप....................................193......................42
147. लघु स्वरूप...................................194......................42
148. स्निग्ध स्वरूप................................195......................42
149. रूक्ष स्वरूप...................................196......................42
150. शीत स्वरूप...................................197......................43
151. उष्ण स्वरूप...................................198......................43
152. रस नामकर्म भेद व स्वरूप ....199-200..............43

153. अम्ल नामकर्म स्वरूप......................201 43
154. तिक्त स्वरूप..................................202 44
155. कटुक स्वरूप.................................203 44
156. कषायला स्वरूप.............................204 44
157. मधुर रस स्वरूप............................205 44
158. गंध नामकर्म स्वरूप व भेद.............206 44
159. सुगंध व दुर्गंध नामकर्म स्वरूप........207 45
160. वर्ण नामकर्म स्वरूप व भेद ....208–210.............45
161. कृष्ण वर्ण स्वरूप...........................211 45
162. नील वर्ण स्वरूप 212 46
163. रक्त वर्ण स्वरूप.............................213 46
164. पीत वर्ण स्वरूप.............................214 46
165. श्वेत वर्ण स्वरूप 215 46
166. आनुपूर्वी नामकर्म स्वरूप व भेद.......216–217.............47
167. नरकगत्यानुपूर्वी स्वरूप 218 47
168. देवगत्यानुपूर्वी स्वरूप.......................219 47
169. मनुष्यगत्यानुपूर्वी स्वरूप...................220 47
170. तिर्यंचगत्यानुपूर्वी स्वरूप...................221 48
171. अगुरुलघु नामकर्म स्वरूप................222 48
172. उपघात स्वरूप...............................223 48
173. परघात स्वरूप 224 48
174. आतप स्वरूप ....225–226.............49
175. उद्योत स्वरूप..................................227–228.............49
176. विहायोगति स्वरूप व भेद 229 49
177. प्रशस्त विहायोगति स्वरूप................230 50
178. अप्रशस्त विहायोगति स्वरूप.............231 50

179. उच्छ्वास नामकर्म स्वरूप..................232......................50
180. प्रत्येक नामकर्म स्वरूप......................233......................50
181. साधारण नामकर्म स्वरूप....................234......................50
182. त्रस नामकर्म स्वरूप...........................235......................51
183. स्थावर नामकर्म स्वरूप.......................236......................51
184. सुभग नामकर्म स्वरूप.........................237......................51
185. दुर्भग नामकर्म स्वरूप..........................238......................51
186. सुस्वर नामकर्म स्वरूप........................239......................52
187. दु:स्वर नामकर्म स्वरूप.......................240......................52
188. शुभ नामकर्म स्वरूप...........................241......................52
189. अशुभ नामकर्म स्वरूप.......................242......................52
190. स्थूल नामकर्म स्वरूप.........................243......................52
191. सूक्ष्म नामकर्म स्वरूप..........................244......................53
192. स्थिर नामकर्म स्वरूप..........................245......................53
193. अस्थिर नामकर्म स्वरूप......................246......................53
194. पर्याप्त नामकर्म स्वरूप.......................247......................53
195. अपर्याप्त नामकर्म स्वरूप....................248......................54
196. पर्याप्त के भेद.....................................249......................54
197. जीवों में पर्याप्ति..................................250......................54
198. आदेय स्वरूप......................................251......................54
199. अनादेय स्वरूप...................................252......................54
200. यश:कीर्ति स्वरूप.................................253......................55
201. अयश: कीर्ति स्वरूप............................254......................55
202. तीर्थंकर नामकर्म स्वरूप......................255......................55
203. चतुर्विध कर्म......................................256......................55
204. पुद्गल विपाकी...................................257-259.............56

205. भव विपाकी....................................260 56
206. क्षेत्र विपाकी...................................261 56
207. जीव विपाकी...................................262-264..............57
208. देशघाती व सर्वघाती ....265-269..............57
209. पुण्य-पाप प्रकृति.............................270-276..............58
210. मूल प्रकृतियों के सादि-अनादि.........
-ध्रुव-अध्रुव प्रकृतिबंध भेद.............277-278..............60
211. सादि-अनादि बंध............................279 60
212. ध्रुव-अध्रुव बंध 280 61
213. ध्रुव बंधी प्रकृति..............................281-282..............61
214. अध्रुव बंधी प्रकृति...........................283 61
215. निरंतर बंधी प्रकृति..........................284-285..............62
216. सांतर बंधी प्रकृति...........................286-288..............62
217. सांतर-निरंतर बंधी प्रकृति ....289-294..............63
218. प्रदेश बंध...64
219. ज्ञानावरण कर्मास्रव कारण.................295-301..............64
220. दर्शनावरण कर्मास्रव कारण ....302-304..............65
221. दर्शनमोहनीय कर्मास्रव कारण...........305-306..............66
222. चारित्रमोहनीय कर्मास्रव कारण ....307-309..............66
223. क्रोध कर्मास्रव कारण.......................310-311..............67
224. मान कर्मास्रव कारण ....312-314..............67
225. माया कर्मास्रव कारण.......................315-316..............68
226. लोभ कर्मास्रव कारण ....317-319..............68
227. हास्य कर्मास्रव कारण.......................320-321..............69
228. रति कर्मास्रव कारण.........................322-323..............69
229. अरति कर्मास्रव कारण......................324-325..............69

230. शोक कर्मास्रव कारण 326–327 70
231. भय कर्मास्रव कारण......................... 328 70
232. जुगुप्सा कर्मास्रव कारण.................... 329–330 70
233. स्त्रीवेद कर्मास्रव कारण.................... 331–333 71
234. पुरुषवेद कर्मास्रव कारण................... 334–336 71
235. नपुंसक वेद कर्मास्रव कारण 337–339 72
236. अंतराय कर्मास्रव कारण.................... 340 72
237. दानान्तराय कर्मास्रव कारण................ 341–33 73
238. लाभान्तराय कर्मास्रव कारण 344–346 73
239. भोगांतराय कर्मास्रव कारण 347–349 74
240. उपभोगांतराय कर्मास्रव कारण............ 350–351 74
241. वीर्यान्तराय कर्मास्रव कारण.............. 352–354 75
242. सातावेदनीय कर्मास्रव कारण 355–356 75
243. असातावेदनीय कर्मास्रव कारण 357–361 76
244. उच्चगोत्र कर्मास्रव कारण.................. 362–363 76
245. नीचगोत्र बंध कारण......................... 364–368 77
246. नरकायु बंध कारण.......................... 369–370 78
247. तिर्यंचायु बंध कारण......................... 374–381 78
248. कुभोगभूमिज मनुष्यायु बंध के कारण 382 80
249. कम्मभूमिज मनुष्यायु बंध कारण 383–384 80
250. भोगभूमिज मनुष्यायु बंध कारण 385–387 80
251. देवायु बंध कारण............................ 388–395 81
252. भवनत्रिक बंध कारण........................ 396–399 83
253. शुभाशुभ बंध कारण 400 83
254. अशुभ नामकर्म बंध कारण............... 401–402 83
255. विविध गति बंध कारण 403 84

256. जाति बंध कारण 404 84
257. शरीर बंध कारण 405 84
258. आहारकादि देह बंध कारण 406-407 85
259. बंधन-संघात-अंगोपांग बंध हेतु 408 85
260. संस्थान बंध कारण 409-410 85
261. संहनन बंध कारण 411 86
262. वज्रवृषभ नाराच बंध कारण..............412-414 86
263. वज्रनाराच संहनन बंध कारण 415 86
264. अन्य संहनन बंध हेतु.......................416-417 87
265. वज्रवृषभनाराच बंधक 418 87
266. अशुभ स्पर्शादि बंध हेतु 419 87
267. शुभ स्पर्शादि बंध हेतु 420 87
268. आनुपूर्वी बंध हेतु.............................421 88
269. उपघात-परघात बंध कारण 422 88
270. अगुरुलघु नामकर्म बंध कारण..........423 88
271. आतप बंध कारण............................424 88
272. उद्योत बंध कारण 425 89
273. श्वासोच्छ्वास बंध कारण 426 89
274. प्रशस्त विहायोगति बंध कारण..........427-428 89
275. अप्रशस्त विहायोगति बंध कारण 429-430 89
276. प्रत्येक शरीर बंध कारण...................431-432 90
277. साधारण नामकर्म बंध कारण...........433-434 90
278. स्थावर नामकर्म बंध कारण 435 91
279. पृथ्वीकायिक नामकर्म बंध कारण 436 91
280. जलकायिक नामकर्म बंध कारण......437 91
281. अग्निकायिक नामकर्म बंध कारण.....438-439 91

282. वायुकायिक नामकर्म बंध कारण......440–441..............92
283. वनस्पतिकायिक नामकर्म बंध कारण.442–443..............92
284. त्रस नामकर्म बंध कारण..................444–445..............92
285. सुभग नामकर्म बंध कारण................446.......................93
286. दुर्भग नामकर्म बंध कारण................447–448..............93
287. सुस्वर बंध कारण............................449–450..............93
288. दु:स्वर बंध कारण...........................451–452..............94
289. सूक्ष्म नामकर्म बंध कारण.................453.......................94
290. बादर नामकर्म बंध कारण.................454.......................94
291. पर्याप्त नामकर्म बंध कारण...............455.......................95
292. अपर्याप्त नामकर्म बंध कारण............456.......................95
293. स्थिर नामकर्म बंध कारण.................457–458..............95
294. अस्थिर नामकर्म बंध कारण.............459.......................95
295. आदेय नामकर्म बंध कारण...............460–461..............96
296. अनादेय नामकम बंध कारण.............462.......................86
297. यश:कीर्ति नामकर्म बंध कारण.........463–664..............86
298. अयश:कीर्ति नामकर्म बंध कारण......465–466..............97
299. तीर्थंकर प्रकृति का फल..................467–468..............97
300. तीर्थंकर प्रकृति बंध कारण...............469–532..............98
301. स्थिति बंध.......................................533–563............108
302. अनुभाग बंध....................................564–572............114
303. कर्म सिद्धांत अध्ययन का माहात्म्य....573–587............116
304. अंतिम मंगलाचरण............................588–593............119
305. ग्रंथ हेतु...594–595............120
306. ग्रंथ प्रशस्ति......................................596–597............120

आचार्य श्री वसुनंदी मुनि कृत

कम्म-सहावो

(कर्म स्वभाव)

मंगलाचरण

समाहि-अणलेण कम्म-कच्छ-दाहगा चउवीसजिणिंदा।
मोक्ख - मग्ग - पवड्ढगा, सुद्धभाव - अच्चुदा णमामि।।1।।

समाधि (शुक्लध्यान) रूपी अग्नि के द्वारा कर्म रूपी वन को जलाने वाले, मोक्ष मार्ग प्रवर्तक, शुद्ध भाव से अच्युत चौबीस तीर्थंकर जिनेंद्रों को मैं नमस्कार करता हूँ।

सिद्ध स्तुति

णिम्मोहा णिक्कम्मा, असरीरा सुद्धतीद - संसारी।
अकलंका अवियारी, णिरुवमा हंदि परियंदामि।।2।।

निर्मोह, निष्कर्म अर्थात् कर्मों से रहित, अकलंक (कर्म, दोषादि कलंक से रहित), अविकारी, उपमा से रहित (निरुपमा), शुद्ध, संसार से अतीत, अशरीरी सिद्धों की मैं स्तुति करता हूँ।

ग्रंथ निरूपण प्रतिज्ञा

सव्वण्हू गदरायी, हिदुवदेसगा अरिहा वंदित्ता।
जिणवाणिं जिणधम्मं, णिरूवेमि कम्मसहावं च।।3।।

सर्वज्ञ, वीतरागी हितोपदेशक अरिहंतों की, जिनवाणी व जिनधर्म की वंदना करके मैं (आचार्य वसुनंदी मुनि) कर्मस्वभाव का निरूपण करता हूँ।

सहावलक्खण - पच्चय - ठिदि फलादिं जाणिदुं कम्माणं।
वोच्छामि सवरहिदाय, पुव्वाइरियाणुसारेणं।।4।।

कर्मों के स्वभाव, लक्षण, प्रत्यय, फल व स्थिति को जानने के लिए मैं स्वपर हित के लिए पूर्वाचार्यों के अनुसार उन्हें कहता हूँ।

संसार का हेतु

कम्मं भवस्स हेदू, दुह-भव-सुहाण कारणं च कम्मं।
णिक्कम्मावत्था चिय, णेया सस्सद-सोक्ख-हेदू॥5॥

कर्म भव का हेतु है। कर्म ही दु:ख और सांसारिक सुखों का कारण है। निश्चय से निष्कर्मावस्था शाश्वत सुख का हेतु जाननी चाहिए।

अशुद्ध जीव स्वभाव

भवभमण-कारणं जं, णियामग-हेदू भवसुह-दुहाणं।
विआणेज्ज कम्मं तं, सहावो दु असुद्धजीवस्स॥6॥

जो भव भ्रमण का कारण है, संसार के सुख-दु:खों का नियामक हेतु है उसे कर्म जानना चाहिए। वह कर्म अशुद्ध जीव का स्वभाव है।

जीवस्स हु रायदोस-णिमित्तं कम्मवग्गणा लहित्ता।
भव-बीअं कम्मं तं, कम्मरूवं परिणमंति चिय॥7॥

जीव के राग-द्वेष रूप परिणामों का निमित्त प्राप्त कर कर्म वर्गणाएँ कर्म रूप परिणमित होती हैं वह कर्म ही भव का बीज है।

संसारी व सिद्ध लक्षण

कम्मजुदा जे जीवा, संसारिणो होंति णियमेण तहा।
कम्मातीदा सिद्धा, लोयग्ग-णिवासगा सुद्धा॥8॥

जो जीव कर्म से युक्त होते हैं वे नियम से संसारी होते हैं तथा लोकाग्र निवासी, शुद्ध, कर्मों से अतीत सिद्ध होते हैं।

अत्थ कम्माण पइडी, वण्णिदुं ताण मूलोत्तर - भेया।
भणामि होज्ज विरत्तो, भवतणभोयादो जाणिच्चु॥9॥

यहाँ कर्मों की प्रकृतियों के वर्णन के लिए उनके मूल व उत्तर भेदों को कहता हूँ। जिससे इन्हें जानकर संसार-शरीर-भोगों से विरक्त हो सकें।

कर्म प्रकृति भेद

एग-बे-तिय-चउ-अट्ठ-अडदालीसुत्तरसयं होंति वा।
संखेज्जासंखेज्जा, अणंतभेया अवि कम्मस्स॥10॥

कर्म की एक, दो, तीन, चार, आठ या एक सौ अड़तालीस प्रकृतियाँ होती हैं। उसके संख्यातासंख्यात वा अनंत भेद भी हैं।

कम्मत्त-सहावेणं, कम्ममेगं हि णो विदियं कया वि।
पुण्णं पावं दुविहं, घादि-अघादि-भेयादो वा॥11॥

कर्मत्व स्वभाव से कर्म एक ही होता है, दूसरा कभी नहीं। कर्म पुण्य-पाप या घातिया-अघातिया के भेद से दो प्रकार का है।

दव्व - भाव - णोकम्मं, तिविहं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहि।
पोग्गल - जीव - खेत्त - भव - विवागीण भेयादु चदुहा॥12॥

कर्म द्रव्य, भाव व नोकर्म इस तीन प्रकार व पुद्गल विपाकी, जीव विपाकी, क्षेत्र विपाकी व भव विपाकी के भेद से चार प्रकार का कहा गया है।

कर्म मूल भेद

दव्वकम्म-मट्ठविहं, णाणावरणं च दंसणावरणं।
मोहणिज्जमंतराय-मह चदुविहाणि य घादि कम्माणि॥13॥

द्रव्य कर्म आठ प्रकार के हैं। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चार प्रकार के घातिया कर्म जानने चाहिए।

वेयणिज्ज-आउ-णाम-गोदाघादि-चदुविहाणि णेयाणि।
घादि-अघादि-जोगेण, अट्ठविहाणि मूलकम्माणि॥14॥

वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र ये चार प्रकार के अघातिया कर्म जानने चाहिए। घातिया व अघातिया के योग से आठ प्रकार के मूलकर्म होते हैं।

नोकर्म भेद

ओरालिय - वेगुव्विय - आहार - सरीर - छहपज्जत्ती य।
णवविह - णोकम्मं तं, असंभवो विणा दव्वविहिं॥15॥

औदारिक शरीर, वैक्रियक शरीर, आहारक शरीर व छः पर्याप्ति—ये नौ प्रकार के नोकर्म हैं। द्रव्यकर्म के बिना वह असंभव है।

भाव कर्म भेद

भावकम्म - मसंखेज्ज - लोयपमाणं दु रायदोसादी।
वा अणंतं जेत्तिया, भावा तेत्तिय - कम्मभेया॥16॥

राग द्वेषादि भाव कर्म असंख्यात लोकप्रमाण हैं वा अनंत हैं। अथवा जितने भाव हैं उतने कर्म के भेद हैं।

उत्तर भेद

अट्ठ - मूलभेयं तह, अडदालीस - समहिद - सयं ताणं।
संखेज्जासंखेज्जा उत्तरोत्तरं दव्व - कम्मं॥17॥

द्रव्य कर्म के आठ मूल भेद हैं, उनके एक सौ अड़तालीस भेद हैं व उत्तरोत्तर भेद संख्यातासंख्यात हैं।

घातिया व अघातिया कर्म

जं जीवस्स अणुजीवि-गुण-घादगं चिय घादि-कम्मं तं।
पडिजीवि - गुण - घादगं, अघादिकम्मं जिणुद्दिट्ठं॥18॥

जो जीव के अनुजीवी गुणों का घातक है वह घातिया कर्म है तथा जो जीव के प्रतिजीवी गुणों का घातक है वह अघातिया कर्म है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा गया है।

अनुजीवी व प्रतिजीवी गुण

जे विज्जंति तियाले, गुणा जीवेण सह सव्ववत्थासु।
ते भणंति अणुजीवी, तव्विवरीया पडिजीवी य॥19॥

जो गुण तीनों कालों में जीव के साथ सभी अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं वे अनुजीवी गुण कहलाते हैं। उनसे विपरीत प्रतिजीवी गुण कहे जाते हैं।

णाणदंसणावरणं, मोहणीयं अंतराय-कम्मं च।
मुणेदव्वं हु घादी, अप्पणुजीवि-गुणघादगादु॥20॥

आत्मा के अनुजीवी गुणों के घातक होने से ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये घातिया कर्म जानने चाहिए।

वेयणिज्जं च गोदं, आउ-णाम-कम्माइं अघादी य।
जम्हा अणुजीविगुणं, अप्पस्स ण घादंति कया वि॥21॥

वेदनीय, आयु, नाम व गोत्र ये अघाति कर्म जानने चाहिए क्योंकि ये कभी भी आत्मा के अनुजीवी गुणों का घात नहीं करते।

दंसण-णाण-सुहाइं, वीरियं पहुदी अणुजीवी गुणा।
अव्वावाह - मवगहण - मगुरुलहुं सुहुमत्तमिदरा॥22॥

दर्शन, ज्ञान, सुख व वीर्य आदि जीव के अनुजीवी गुण हैं एवं अव्याबाधत्व, अवगाहनत्व, अगुरुलघुत्व व सूक्ष्मत्व आदि जीव के प्रतिजीवी गुण हैं।

बंध भेद

चदुविहो होदि बंधो, पइडी पदेसो ठिदी अणुभागो।
पत्तेय-बंधो जाण, असंखेज्ज-लोयपमाणं दु॥23॥

इन कर्मों का बंध चार प्रकार का होता है—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग। प्रत्येक बंध असंख्यात लोकप्रमाण जानना चाहिए।

प्रकृति बंध

ज्ञानावरण कर्म स्वरूप व भेद

जीवस्स णाणगुणं दु, घाददि आवरदे णाणावरणं।
मदिसुदोहिमणपज्जय-केवलं पणविहं जाणेज्ज॥24॥

जो जीव के ज्ञान गुण का घात करता है, उसे आवरणित करता है वह ज्ञानावरण कर्म कहलाता है। मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्ययज्ञानावरण व केवलज्ञानावरण के भेद से वह पाँच प्रकार का जानना चाहिए।

मतिज्ञानावरण स्वरूप

इंदिय - अणिंदियेहिं, लद्धं णाणं आभिणिबोहियं च।
तस्सावरगं णेयं, कम्मं दु मदिणाणावरणं॥25॥

इंद्रिय व अनिन्द्रिय के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त होता है वह आभिनिबोधिक वा मतिज्ञान है। उस मतिज्ञान का आवरक कर्म मतिज्ञानावरण जानना चाहिए।

श्रुतज्ञानावरण स्वरूप

मदिणाणेणं अहवा, सुदेणं होज्जा हु जं णाणं तं।
सुदणाणं पक्खोडदि, तं सुदणाणावरणं जाण॥26॥

मतिज्ञान के द्वारा अथवा श्रुत से जो ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है। जो उस श्रुत ज्ञान का आच्छादन करता है वह श्रुतज्ञानावरण जानना चाहिए।

अवधिज्ञानावरण स्वरूप

दव्व-खेत्त-काल-भाव-सीमआइ जाणगं ओहि-णाणं।
मुत्तत्थाण जेण तं, छादिज्जदि ओहिआवरणं॥27॥

द्रव्य, क्षेत्र,काल व भाव की सीमा से मूर्तिक पदार्थों का जानने वाला अवधिज्ञान है। जिसके द्वारा अवधिज्ञान का आवरण किया जाता है वह अवधिज्ञानावरण है।

मन:पर्यय ज्ञानावरण स्वरूप

परमणस्स भावाणं, चिंतिदाचिंतिदद्धचिंतिदाणं।
जाणगं मणपज्जयं, छाददि मणपज्जयावरणं।।28।।

दूसरों के मन के चिंतित, अचिंतित व अर्द्धचिंतित भावों को जानने वाला मन:पर्यय ज्ञान है। जो मन:पर्यय ज्ञान का आच्छादन करता है वह मन:पर्यय ज्ञानावरण कहलाता है।

केवलज्ञानावरण स्वरूप

तियालिय-दव्व-गुण-पज्जयाण जाणगं केवलं जुगवं।
पक्खोडदि णादव्वं, केवलणाणावरण - कम्मं।।29।।

त्रैकालिक द्रव्य, गुण व पर्यायों को युगपत् जानने वाला केवलज्ञान कहलाता है। केवलज्ञान को जो आच्छादित करता है वह केवलज्ञानावरण कर्म जानना चाहिए।

दर्शनावरण कर्म स्वरूप

सामण्ण-गहण-दंसण-मावरेदि जं दु दंसणगुणं तं।
तं दंसणावरणं दु, उप्पालंति गणहरदेवा।।30।।

सामान्य ग्रहण (सत्तावलोकन) दर्शन है जो उस दर्शन गुण का आच्छादन करता है उसे गणधरदेव दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

महासत्तागहणस्स, अप्पस्स दंसणगुणस्स जं तं दु।
समच्छायगं दंसण-मावरणं कम्मं जाणेज्ज।।31।।

महासत्ता ग्रहण रूप आत्मा के दर्शन गुण का जो आच्छादक है वह दर्शनावरण कर्म जानना चाहिए।

दंसणावरणस्स खलु, खओवसमेणं होज्ज सव्वाणं।
छउमत्थाण सामण्णसत्तावलोयणं णियमेण।।32।।

दर्शनावरण के क्षयोपशम से सभी छद्मस्थों के नियम से सामान्य सत्तावलोकन होता है।

दर्शनावरण भेद

दंसणावरण - कम्मं, णवविहं जिणवरेहिं णिद्दिट्ठं।
चक्खु - अचक्खू ओही, केवलं च दंसणावरणं।।33।।
णिद्दा णिद्दा-णिद्दा, पयला पयला - पयला तह कम्मं।
थाणगिद्धी दु पमाद - जणिद - दंसणावरणं जाण।।34।।

जिनेंद्र प्रभु के द्वारा दर्शनावरण कर्म नौ प्रकार का कहा गया है। चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण केवलदर्शनावरण निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला व स्त्यानगृद्धि ये प्रमाद जनित दर्शनावरण जानना चाहिए।

चक्षु दर्शनावरण स्वरूप

चक्खु-जणिद-णाणस्स दु, पुव्वम्मि जं दंसणं चक्खुं तं।
तस्स समच्छायगं च, जाण चक्खु-दंसणावरणं।।35।।

चक्षु जनित ज्ञान के पूर्व में जो दर्शन होता है वह चक्षु दर्शन है। उसका आच्छादक चक्षुदर्शनावरण जानना चाहिए।

चउ-इंदियादो सण्णि-पेरंतं चक्खुं दंसणं होज्ज।
जं पडिपेहादे तं, चक्खुदंसणावरण-कम्मं।।36।।

चार इंद्रिय से संज्ञी पर्यंत सभी के चक्षु दर्शन होता है जो उस चक्षु दर्शन का आवरण करता है वह चक्षु दर्शनावरण कर्म है।

अचक्षु दर्शनावरण स्वरूप

चक्खुं विणा सेसेहि, उप्पण्ण-णाण-पुव्वम्मि अचक्खुं।
तस्स समच्छायगं दु, चिय अचक्खुदंसणावरणं।।37।।

चक्षु इंद्रियों के बिना शेष इंद्रियों के द्वारा उत्पन्न ज्ञान से पूर्व होने वाला दर्शन अचक्षुदर्शन कहलाता है। उसको आच्छादित करने वाला अचक्षु दर्शनावरण है।

विभंगोहि-मणपज्जय-पुव्वम्मि अचक्खुदंसणं हवेदि।
जं छादेदि अचक्खुं, अचक्खुदंसणावरणं तं॥38॥

विभंगावधि व मन:पर्ययज्ञान के पूर्व में अचक्षुदर्शन होता है। जो उस अचक्षु दर्शनावरण को आवरणित करता है वह अचक्षुदर्शनावरण जानना चाहिए।

अवधिदर्शनावरण स्वरूप

ओहिणाणस्स पुव्वे, सया ओहिदंसण मुणेदव्वं।
तस्स छादगं दु ओहि - दंसणावरणं विंदंते॥39॥

अवधिज्ञान के पूर्व में सदा अवधिदर्शन जानना चाहिए। उस अवधि दर्शन को ढकने वाले को अवधि दर्शनावरण कहते हैं।

केवलदर्शनावरण स्वरूप

केवलणाणेणं सह, जं दंसणं हवेदि केवलं तं।
तस्स केवलदंसणावरणं समच्छायगं जाणह॥40॥

केवलज्ञान के साथ जो दर्शन होता है वह केवलदर्शन है। उस केवलदर्शन का आच्छादक केवलदर्शनावरण जानना चाहिए।

स्त्यानगृद्धि स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, णिद्दाए कुव्वदि भीमकज्जं वि।
थाणगिद्धी दु णेया, झंखदि कडकडावदि दंते॥41॥

जिस कर्म के उदय से जीव निद्रा में भी भीम कार्य करता है, बड़बड़ाता है व दाँतों को किटकिटाता है वह स्त्यानगृद्धि कर्म जानना चाहिए।

2. निद्रा-निद्रा स्वरूप

सा णिद्दा-णिद्दा अइ-णिद्दाइ सयदि जस्स कम्मुदयेण।
उट्ठाविदे वि सक्कदि, णो उग्घादिदुं णयणं वा॥42॥

जिस कर्म के उदय से जीव अति निद्रा में सोता है या उठने पर भी नयन खोलने में समर्थ नहीं होता वह निद्रा-निद्रा जानना चाहिए।

3. प्रचला-प्रचला स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, अंगाणि चलंति णिद्दाए तहा।
मुहेण वहेदि लाला, पयला पयला सा णेया दु।।43।।

जिस कर्म के उदय से जीव के निद्रा में अंग चलते हैं तथा मुख से लार बहती है वह प्रचला-प्रचला जाननी चाहिए।

निद्रा स्वरूप

अप्पकालाय सयदे, उट्ठाविदे उट्ठदे तह सिग्घं।
जस्स कम्मोदयेणं, णिद्दा - दंसणावरणं तं।।44।।

जिस कर्म के उदय से जीव अल्प काल के लिए सोता है व उठाने पर शीघ्र ही उठ जाता है वह निद्रा दर्शनावरण कहलाता है।

प्रचला स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सीसं चिय अद्धणिद्दिद-जीवस्स।
मणा मणा फुरदे वा, सयंतो वि णादि पयला सा।।45।।

जिस कर्म के उदय से आधे सोते हुए जीव का सिर थोड़ा-थोड़ा हिलता रहता है, अथवा सोते हुए भी जानता है वह प्रचला कहलाती है।

जावदु पुण्णरूवेण, दंसणावरणं विणस्सदे णेव।
तावदु ण लहदि जीवो, केवलदंसण-खइय-भावं।।46।।

जब तक पूर्ण रूप से दर्शनावरण को जीव नष्ट नहीं करता तब तक वह केवलदर्शन क्षायिक भाव को प्राप्त नहीं करता।

मोहनीय कर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवो मण्णदि देहमेव अप्पा।
मोहदे परतच्चेसु, मोहणिज्जं जं तं णेयं॥47॥

जिस कर्म के उदय से जीव शरीर को ही आत्मा मानता है अथवा जो परतत्त्वों में मोहित करता है वह मोहनीय कर्म जानना चाहिए।

मोहेदि मोहणिज्जं, जीवं भव-भमणस्स हेदू तस्स।
ते हवंति जगपुज्जा, जे तं खयेदुं समत्था दु॥48॥

जो जीव को मोहित करता है वह मोहनीय कर्म है। वह उस (जीव) के भव भ्रमण का हेतु है। जो उसे क्षय करने में समर्थ होते हैं वे जगपूज्य होते हैं।

मोहविजयी को नमस्कार

जे मोहं उवसमिदुं, खओवसमिदुं खयिदुं सक्कंते।
पप्पोंति अप्पविहवं, ते सया णमो णमो ताणं॥49॥

जो मोह का उपशम, क्षयोपशम या क्षय करने में समर्थ होते हैं वे आत्म-वैभव को प्राप्त करते हैं। उनके लिए सदा नमस्कार हो, नमस्कार हो।

मोहनीय के भेद

बेविहं मोहणिज्जं, दंसणमोहं तह चरित्त-मोहं।
पढमस्स तिण्णि-भेया, पणवीस-भेया य विदियस्स॥50॥

मोहनीय कर्म दो प्रकार का होता है—दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीय। प्रथम दर्शन मोहनीय के तीन भेद हैं और द्वितीय चारित्र मोहनीय के पच्चीस भेद होते हैं।

दर्शनमोहनीय भेद

मिच्छत्त-सम्ममिच्छं, सम्मत्तपइडी य तिविहं भणिदं।
दंसणमोहणिज्जं दु, मिच्छत्तं मूलो एदस्स॥51॥

मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वप्रकृति–ये तीन प्रकार का दर्शनमोहनीय कहा गया है। मिथ्यात्व इसका मूल है।

मिथ्यात्व स्वरूप

मिच्छोदयेण दव्वं, विवरीयं तच्चं चिय सद्दहदे।
एगं हि जीवदेहं, मण्णेदि पुध-पुध णो कया वि॥52॥

मिथ्यात्व के उदय से जीव–द्रव्य व तत्त्व का विपरीत श्रद्धान करता है। जीव व देह को एक ही मानता है, पृथक्–पृथक् कदापि नहीं मानता।

मिथ्यात्व के भेद

एगंतं विवरीयं, संसय - मण्णाणं तह वेणइगं।
मिच्छत्तं पंचविहं, अण्ण-भेयाणि वि जाणेज्जा॥53॥

एकांत, विपरीत, संशय, अज्ञान तथा वैनयिक ये पाँच प्रकार के मिथ्यात्व हैं। इनके अन्य भेद भी जानने चाहिए।

गहिदं अग्गहिदं वा, सादि-अणादी णिसग्गिय-मिदरं च।
मिच्छत्त-भेयाणि वि, मुणेदव्वाणि जिणसत्थेहि॥54॥

गृहीत–अगृहीत, सादि–अनादि वा नैसर्गिक–बोधज के भेद से मिथ्यात्व के भेद भी हैं। जिन शास्त्रों के अनुसार ऐसा जानना चाहिए।

एकांत मिथ्यात्व स्वरूप

वत्थुम्मि विज्जमाणा, गहदि इग-मविक्खिय अणेग-धम्मा।
मिच्छत्तं एगंतं, सम्मं जाणिय तं उज्झेज्ज॥55॥

वस्तु में विद्यमान अनेक धर्मों की उपेक्षा कर जो एक को ग्रहण करता है वह एकांत मिथ्यात्व है। सम्यक् तत्त्व जानकर उस एकांत मिथ्यात्व को छोड़ना चाहिए।

विपरीत मिथ्यादृष्टि स्वरूप

पत्तेयं दव्वस्स हु, होदि भिण्ण-भिण्ण-सहावो णियमा।
जहत्थं ण मण्णदि जो, विवरीय-मिच्छाइट्ठी सो॥56॥

प्रत्येक द्रव्य का नियम से भिन्न-भिन्न स्वभाव होता है। जो यथार्थ को नहीं मानता वह विपरीत मिथ्यादृष्टि है।

संशय मिथ्यादृष्टि स्वरूप

तच्चेसुं अणिण्णिदं, संसयजुदं कुणदि सद्दहणं जो।
संसय-मिच्छाइट्ठी, भमेदि भवे सुइरंतं सो॥57॥

जो तत्त्वों में अनिर्णीत संशय युक्त श्रद्धान करता है वह संशय मिथ्यादृष्टि सुचिर काल तक संसार में भ्रमण करता है।

अज्ञान मिथ्यादृष्टि

अण्णाणं सुह-हेदू, अज्जेज्ज ण णाणं तं एरिसो दु।
अण्णाणेण सिवं जो, अण्णाण-मिच्छाइट्ठी सो॥58॥

अज्ञान दु:ख का हेतु है। इसलिए ज्ञान का अर्जन नहीं करना चाहिए, जो ऐसा मानता है या अज्ञान से मोक्ष मानता है वह अज्ञानमिथ्यादृष्टि है।

वैनयिक मिथ्यादृष्टि

सम्म-मिच्छ-तच्चाइं, समरूवेण सद्दहदि जो जीवो।
विवित्तहीणो हवेदि, वेणइग - मिच्छाइट्ठी सो॥59॥

जो जीव सम्यक् व मिथ्या तत्त्वों का समान रूप से श्रद्धान करता है, वह विवेक से हीन वैनयिक मिथ्यादृष्टि होता है।

सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सव्वदा सम्म-मिच्छत्त-रूवा हि।
होंति अप्पपरिणामा, सम्मत्तमिच्छापइडी सा॥60॥

जिस कर्म के उदय से आत्म परिणाम सर्वदा सम्यक् मिथ्यात्व रूप होते हैं वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है।

सम्म-मिच्छत्त-जुत्तं, जो मिस्सरूवं सद्दहदि अहवा।
सम्मत्तमिच्छपइडी, जहा दहिगुडमिस्ससादो दु॥61॥

अथवा जो सम्यक् मिथ्यात्व से युक्त मिश्र रूप श्रद्धान करता है वह सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति है जैसे दधि-गुड़ का मिश्र स्वाद।

सम्यक्त्व प्रकृति स्वरूप

चलं मलिणं अगाढं, दोसा उप्पज्जंते सम्मत्ते।
सम्मत्तपइडी जेण, सा दंसणाणुभायजुत्ता॥62॥

जिसके द्वारा सम्यक्त्व में चल, मलिन, अगाढ़ दोष उत्पन्न होते हैं वह दर्शन मोह अनुभाग से युक्त सम्यक्त्व प्रकृति है।

कषाय का स्वरूप

कम्म-रुक्खुप्पत्तीइ, अप्पखेत्तं कसदि सेट्ठरूवेण।
अहवा कसदे अप्पं, कसाओ त्ति खलु मुणेदव्वो॥63॥

जो कर्म रूपी वृक्ष की उत्पत्ति के लिए आत्मा रूपी क्षेत्र को श्रेष्ठ रूप से कसता है अथवा जो आत्मा को कसता है वह कषाय जाननी चाहिए।

कषाय के भेद

सोलसविहो कसाओ, णवविहो णोकसाओ णादव्वो।
मूलभेया चदू चिय, कोहो माणं जिम्ह-लोहो॥64॥

कषाय सोलह प्रकार की व नोकषाय नौ प्रकार की जाननी चाहिए। कषाय के मूल भेद चार हैं—क्रोध, मान, माया व लोभ।

अणंताणुबंधि - आइ - पत्तेयं तहा चदुविहा जहेव।
सव्वाणं अणुभागं, जहक्कमेणं मुणेदव्वं॥65॥

इस प्रकार अनंतानुबंधी आदि कषाय प्रत्येक चार प्रकार की है। यथाक्रम से सभी का अनुभाग जानना चाहिए।

कषाय विपाक में हीनाधिकता

अइतिव्वो पढमो तह, कमसो हीणं अप्पच्चक्खाणं।
तादो पच्चक्खाणं, तादो संजलण-विवागो य॥66॥

सबसे तीव्र प्रथम अनंतानुबंधी कषाय है, अप्रत्याख्यान क्रमशः हीन है, उससे हीन प्रत्याख्यान व उससे हीन संज्वलन का विपाक है।

नोकषाय स्वरूप

भणिदा किंचिकसाआ, णोकसाआ णो विणा कसायं दु।
होज्जा अप्पघादगा, मोहणिज्ज - कम्म - संताणा॥67॥

किंचित् कषाय नोकषाय कही गई है। वे कषाय के बिना नहीं होतीं। वे आत्म घातक व मोहनीय कर्म की संतान हैं।

नोकषाय भेद

हस्स-रदि-अरदि-सोगा, भय-जुगुस्सा त्थि-पुरिस-संढ-वेदा।
मूलविहीण - रुक्खोव्व, जाणिज्जंति अमरवल्लीव॥68॥

हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद व नपुंसक वेद ये नो कषाय मूल अर्थात् जड़ से रहित वृक्ष के समान, अमरबेल के समान जानी जाती हैं।

अनंतानुबंधी कषाय

वड्ढदि मिच्छत्तेणं, सह अणादीदु अणंतभवहेदू।
अच्चंतकुभावरूव - अणंताणुबंधी कसाओ॥69॥

अनादिकाल से अत्यंत कुभाव रूप अनंतानुबंधी कषाय मिथ्यात्व के साथ वृद्धिगत होती है।

अणंताणुबंधी अइ-दुहदा दु दुग्गइ-गमण-कारणं च।
णियमा णिगोदियादो, सासणंतं कुभावा होंति।।70।।

अनंतानुबंधी कषाय अति दु:ख देने वाली और दुर्गति के गमन का कारण है। निगोद से सासादन गुणस्थान पर्यंत नियम से कुभाव (अनंतानुबंधी कषाय) होते हैं।

सिलभेद-सेल-बेणुवमूल-किमिराय-सारच्छं तहा हु।
अणंताणुबंधी चिय, कोहादी णेया कमेणं।।71।।

अनंतानुबंधी क्रोध पत्थर की रेखा के समान, अनंतानुबंधी मान पत्थर के समान, अनंतानुबंधी माया बाँस की जड़ के समान तथा अनंतानुबंधी लोभ कृमिराग के समान जानना चाहिए।

अप्रत्याख्यान कषाय

अप्पच्चक्खाणं वा, संजमासंजमं देसचरियं च।
घाददि जो सो णेयो, अप्पच्चक्खाण-कसाओ दु।।72।।

जो अप्रत्याख्यान, संयमासंयम या देशचारित्र को घात करती है वह अप्रत्याख्यान कषाय जाननी चाहिए।

पुढविभेद-अत्थि समो रब्भय-सिंगं व चक्कमलं व तह।
ताण - मप्पच्चक्खाण - कोहादीणं मुणेदव्वो।।73।।

अप्रत्याख्यान क्रोध का स्वभाव पृथ्वी की रेखा के समान, अप्रत्याख्यान मान हड्डी के समान, अप्रत्याख्यान माया मेंढ़े के सींग के समान तथा अप्रत्याख्यान लोभ चक्रमल (ओंगन) के समान जानना चाहिए।

प्रत्याख्यान कषाय

संजमं महव्वदं च, पच्चक्खाणं पडिपेहादे वा।
पच्चक्खाणं-सक्को, खयुवसमो माणुस - गदीए।।74।।

जो संयम, महाव्रत या प्रत्याख्यान को घातती है वह प्रत्याख्यान कषाय है। प्रत्याख्यान का क्षय व उपशम एक मनुष्य गति में ही संभव है।

हवेदि पच्चक्खाणं, धूलि - कट्ठ - गोमुत्तदेहमलोव्व।
णरगदीए संभवो, संजमघादग - खयुवसमो दु॥75॥

प्रत्याख्यान क्रोध धूलि के समान, प्रत्याख्यान मान काष्ठ के समान, प्रत्याख्यान माया गोमूत्र के समान तथा प्रत्याख्यान लोभ शरीर के मल के समान जानना चाहिए। मनुष्य गति में ही संयम की घातक प्रत्याख्यान कषाय का क्षयोपशम संभव है।

संज्वलन कषाय

संजमे पमादरूव-मलुप्पादयो संजलणो णेयो।
तिव्वोदयम्मि छट्ठम - गुणट्ठाणं होदि एदस्स॥76॥

संयम में प्रमाद रूप मल का उत्पादक संज्वलन कषाय जाननी चाहिए। इसके तीव्र उदय से षष्ठम गुणस्थान होता है।

संजलणकसायस्स दु, सत्तमादु दसमगुणट्ठाणंतं।
हवंति मंदोदयम्मि, वदंति सव्वण्हु-गदरायी॥77॥

संज्वलन कषाय के मंदोदय में सप्तम से दशम गुणस्थान होते हैं। ऐसा सर्वज्ञ, वीतरागी प्रभु कहते हैं।

तस्स मंदोदयो अवि, घाददि जहक्खाद-सुद्धि-संजमं।
संजमेणं सह दहदि, संजलणो उदयादु जदीसु॥78॥

उस (संज्वलन) का मंदोदय भी यथाख्यात शुद्धि संयम को घातता है। यह संज्वलन कषाय संयम के साथ जलती है। यतियों में मात्र उदय रूप यह ही कषाय होती है।

सामाइयो दु छेदोवट्ठावणं परिहारविसुद्धी य।
होज्ज सुहुमसंपराय - जमो तस्स अइमंदुदयम्मि॥79॥

उसके अर्थात् संज्वलन के अति मंद उदय में सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि तथा सूक्ष्म सांपराय संयम होता है।

जलराइ - वेत्त - खोरुप्प - हरिद्दराएण तह सारच्छं।
संजलणं कोह - माण - माया लोहो कमेण जाण।।80।।

संज्वलन क्रोध जल की रेखा के समान, संज्वलन मान बेंत के समान, संज्वलन माया खुरपा के समान कुटिल तथा संज्वलन लोभ हल्दी के रंग के समान परिणाम वाला कहा गया है।

ससंजलणकसाओ दु, जो वि चडदि उवसम-खवगसेणिं च।
उवसामगो उवसमदि, खवगो खयिय केवली होदि।।81।।

संज्वलन कषाय से सहित जो कोई भी उपशम श्रेणी चढ़ता है वह उपशामक कषायों का उपशम करता है और जो कोई भी क्षपक श्रेणी चढ़ता है वह क्षपक कषायों का क्षय कर केवली होता है।

हास्य नोकषाय स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, रायजुदो होदि हस्सपरिणामो।
हस्स-कसाओ सुहस्स, भवे णिच्छयेण दुह-हेदू।।82।।

जिस कर्म के उदय से राग युक्त हास्य परिणाम होता है वह हास्य कषाय संसार में सुख का व निश्चय से दु:ख का हेतु है।

रति नोकषाय स्वरूप

रायरूवपरिणामो, इट्ठविसयेसु कम्मुदयेण जस्स।
होज्ज रदी सा णेया, अप्पघादगा महुरविसोव्व।।83।।

जिस कर्म के उदय से इष्ट विषयों में राग रूप परिणाम होते हैं वह रति नोकषाय जाननी चाहिए। वह मधुर विष के समान आत्मा की घातक है।

अरति नोकषाय स्वरूप

अणिट्ठ-विसयेसु होदि, दोस-वुड्ढी जस्स कम्मोदयेण।
अरदी कम्मं णेयं, रदि-भावोव्व भव-कारणं दु॥84॥

जिस कर्म के उदय से अनिष्ट विषयों में द्वेष बुद्धि होती है वह अरति कर्म जानना चाहिए। वह रति भाव के समान संसार का कारण है।

शोक नोकषाय स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, इट्ठ-वत्थु-जण-विजोग-समये जो।
सो होज्जा दुह-भावो, अट्ठहेदू सोगो णेयो॥85॥

जिस कर्म के उदय से इष्ट वस्तु-जन के वियोग के समय में जो दु:ख का भाव होता है वह आर्त्त का कारण शोक जानना चाहिए।

भय नोकषाय स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं उप्पज्जदि भयुव्वेगो चित्तम्मि।
तं भयकम्मं सुक्कज्झाण-घादगं मुणेदव्वं॥86॥

जिस कर्म के उदय से चित्त में भय-उद्वेग उत्पन्न होता है वह शुक्ल ध्यान का घातक भयकर्म जानना चाहिए।

जुगुप्सा नोकषाय स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, उप्पज्जेदि दुगुंछा चिलिसा वा।
तं दुगुंछा-कम्मं दु, धम्म-विघादगं अवि णेयं॥87॥

जिस कर्म के उदय से ग्लानि या विचिकित्सा उत्पन्न होता है वह भी धर्म का विघातक जुगुप्सा कर्म जानना चाहिए।

स्त्रीवेद स्वरूप

पुरिसेण सह रमणिदुं, होदि कंखा जस्स कम्मुदयेणं।
थीवेदो सो णेयो, तं खयिदुं कुणदु पुरिसत्थं॥88॥

जिस कर्म के उदय से पुरुष के साथ रमण की इच्छा होती है वह स्त्रीवेद जानना चाहिए। भव्य जीव उसे क्षय करने का पुरुषार्थ करें।

पुरुषवेद स्वरूप

इत्थीइ सह रमणिदुं, होदि कंखा जस्स कम्मुदयेणं।
सो होज्ज पुरिसवेदो, अयं हि दव्ववेदो सिवस्स॥89॥

जिस कर्म के उदय से स्त्री के साथ रमण की कांक्षा होती है वह पुरुषवेद होता है। मोक्ष के लिए यह ही एक द्रव्य वेद है।

नपुंसकवेद स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, इत्थिपुरिसेहिं सह य रमणेदुं।
कंखा होदि सो संढ - वेदो हु घोर - दुक्ख - हेदू॥90॥

जिस कर्म के उदय से स्त्री, पुरुष दोनों के साथ रमण की कांक्षा होती है वह घोर दुःख का हेतु नपुंसक वेद है।

अंतराय कर्म स्वरूप

विग्घ-मुप्पज्जदि जस्स, कम्मुदयेण दाणाइ-लद्धीसुं।
अंतराइयं णेयं, तं भेयं दु घादिकम्मस्स॥91॥

जिस कर्म के उदय से दान आदि लब्धियों में विघ्न उत्पन्न होता है वह घातिया कर्म का भेद अंतराय कर्म जानना चाहिए।

अंतराय कर्म भेद

दाणं लाहं भोगं, उवभोग-वीरियं पणविह-विग्घं।
पंचविह - भवकारणं, तत्तो विणासेज्ज सया तं॥92॥

दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य–ये पाँच प्रकार के विघ्न पाँच प्रकार के संसार का कारण हैं इसलिए सदा उसका नाश करना चाहिए।

दानांतराय कर्म स्वरूप

अणुग्गहत्थं सवित्त - अवहत्थणं दाणं मुणेदव्वं।
तस्स विग्घ - कारणं दु, दाणंतराइयमहकम्मं।।93।।

अनुग्रह के लिए स्वधन का त्याग करना दान जानना चाहिए। उसके विघ्न का कारण दानांतराय नामक पाप कर्म है।

जहेच्छदाणं दादुं, होदि विग्घं कम्मोदयेण जस्स।
दाणंतराइयं तं, खयियदाणं होदि अरिहाणं।।94।।

जिस कर्म के उदय से यथेच्छ दान देने में विघ्न होता है वह दानांतराय कर्म जानना चाहिए। अरिहंतों के क्षायिक दान होता है।

लाभांतराय कर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, लाहे हवेदि विग्घं तं णेयं।
लाहंतराइयं चिय, सम्मलाहस्स तं खयेज्जा।।95।।

जिस कर्म के उदय से लाभ में विघ्न होता है वह लाभांतराय कर्म जानना चाहिए। सम्यक् लाभ के लिए उसे क्षय करना चाहिए।

भोगांतराय कर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, भोगम्मि हवदि णेयं विग्घं तं।
भोगंतराइयं तं, सम्मभोगं लहिदुं खयेदु।।96।।

जिस कर्म के उदय से भोग में विघ्न होता है वह भोगांतराय कर्म जानना चाहिए। सम्यक् भोग प्राप्त करने के लिए उसे क्षय करना चाहिए।

भुंजित्तु एगवारं, आमुयिज्जेदि भोगो चिय जो सो।
जस्सुदयेणं विग्घं, तम्मि होदि भोगंतरायं।।97।।

जो एक बार भोगकर छोड़ दिया जाता है वह भोग है। जिस कर्म के उदय से उसमें विघ्न होता है वह भोगांतराय कर्म जानना चाहिए।

उपभोगांतराय कर्म स्वरूप

भुंजिय वारं वारं, भुंजणीयो य उवभोगो जो सो।
तस्स विग्घ-कारणं दु, उवभोगंतराइयं जाण॥98॥

जो एक बार भोगकर बार-बार भोगने योग्य है वह उपभोग है। उसके विघ्न का कारण उपभोगांतराय कर्म जानो।

वीर्यान्तराय कर्म स्वरूप

सत्ती वीरियं होज्ज, तस्स विग्घ-कारणं मुणेदव्वं।
वीरियंतराइयं दु, जं तं कम्मं णाणि-जणेहि॥99॥

शक्ति वीर्य होती है। जो उसके विघ्न का कारण है वह ज्ञानीजनों के द्वारा वीर्यान्तराय कर्म जानना चाहिए।

वेदनीय कर्म स्वरूप

सुहदुहुप्पायगं तह, जीवाणं चिअ वेयणिज्जकम्मं।
सादासादाणं तं, दुविहं भेयादु णादव्वं॥100॥

जीवों के सुख-दुःख का उत्पादक वेदनीय कर्म है। वह साता-असाता के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए।

असाता वेदनीय स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, लहंति दुह - हेदु - पदत्था जीवा।
असादावेयणिज्जं, तं दुहकारणं णादव्वं॥101॥

जिस कर्म के उदय से जीव दुःख के हेतु पदार्थों को प्राप्त करते हैं वह दुःख का कारण असातावेदनीय कर्म जानना चाहिए।

असादं दुहं णेयं, भुंजावेदि वेदावेदि चिअ तं।
असादावेयणिज्जं, जं तं कम्मं मुणेदव्वं॥102॥

असाता नाम दुःख का है, उस दुःख का जो वेदन, भोग या अनुभवन करता है उसे असाता वेदनीय कर्म जानना चाहिए।

साता वेदनीय स्वरूप

भवसुहहेदू जीवो, जाइं ताइं लहंति वत्थूइं।
तं सादाए फलं दु, पसत्थकम्मस्स णादव्वं॥103॥

जीव संसार सुख के हेतु जिन वस्तुओं को प्राप्त करते हैं वह प्रशस्त साता वेदनीय कर्म का फल जानना चाहिए।

सादं सोक्खं णेयं, भुंजावेदि वेदावेदि चिअ तं।
सादावेयणिज्जंत्ति, संसारसुहहेदू जं तं॥104॥

साता नाम सुख का है उस सुख का जो वेदन का भोग कराता है उसे संसार सुख का कारण साता वेदनीय कर्म जानना चाहिए।

गोत्र कर्म स्वरूप

णीयुच्चकुलेसु जस्स, कम्मुदयेण उप्पज्जदे जीवो।
तं गोदकम्म-दुविहं, भेयादो उच्चणीयाणं॥105॥

जिस कर्म के उदय से जीव नीच या उच्च कुलों में उत्पन्न होता है वह गोत्रकर्म ऊँच व नीच के भेद से दो प्रकार का जानना चाहिए।

नीच गोत्र स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, लोयणिंद-दरिद्द-णीयगोदं च।
हवेदि जीवाणं तं, णीयगोदं कम्मं णेयं॥106॥

जिस कर्म के उदय से जीवों के लोकनिंद्य, दरिद्र नीच गोत्र होता है वह नीचगोत्र कर्म जानना चाहिए।

उच्च गोत्र स्वरूप

महव्वदायरणजोग्ग - लोयपूजिद - उच्चकुलेसु जीवा।
वक्कमंते तं उच्च - गोदं कम्मुदयेणं जस्स॥107॥

जिस कर्म के उदय से जीव महाव्रतों के आचरण योग्य लोक पूजित उच्चकुलों में उत्पन्न होते हैं वह उच्चगोत्र कर्म कहलाता है।

आयुकर्म स्वरूप व भेद

जस्स कम्मोदयेणं, जीवो ठादि कम्मि णिच्छिद-देहे।
भव-धारण-हेदू तं, आउणो चदुभेयं णेयं॥108॥

जिस कर्म के उदय से जीव किसी निश्चित देह में ठहरता है वह भव धारण की हेतु आयु के चार भेद जानने चाहिए।

णिरय - तिरिय - णर - सुराण, भेयादो चदुविहं आउ-कम्मं।
णिरयाउं अह-पइडी, सेसा पुण्णरूवा जाण॥109॥

नरक, तिर्यंच, नर व सुरायु के भेद से आयु कर्म चार प्रकार का कहा गया है। नरकायु पाप प्रकृति है व शेष पुण्य रूप जानी जाती है।

नरकायु स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, धरंति अइ - दुहजुद - णारयदेहं।
जीवां तं णिरयाउं, बंधदि संकिलिट्ठभावेहि॥110॥

जिस कर्म के उदय से जीव अति दुःख से युक्त नारक देह को धारण करते हैं उसे नरकायु कहते हैं। जीव संक्लेशित भावों से उसका बंध करता है।

तिर्यंचायु स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवा जम्मंति तिरिय - जोणीए।
तं तिरियाउं णेयं, मायाइ - मुक्खेण बंधेदि॥111॥

जिस कर्म के उदय से जीव तिर्यंच योनि में जन्म लेते हैं उसे तिर्यंचायु जानना चाहिए। मायादि की मुख्यता से उसका बंध होता है।

मनुष्यायु स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, माणुसगदीए जम्मंति जीवा।
मणुसाउं तं बंधदि, अप्पारंभ - परिग्गहेणं॥112॥

जिस कर्म के उदय से जीव मनुष्य गति में जन्म लेते हैं वह मनुष्यायु है। जीव अल्पारंभ व अल्पपरिग्रह से उसका बंध करते हैं।

देवायु स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, दिव्व-तणु-धारग-सुरेसु जम्मंति।
तं देवाउं णेयं, मंदकसायी लहंते तं॥113॥

जिस कर्म के उदय से जीव दिव्य देह के धारक देवों में जन्म लेते हैं वह देवायु जाननी चाहिए। उस देवायु को मंदकषायी प्राप्त करते हैं।

नाम कर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, लहंते बहुरूवजुददेहं तं।
जाणेज्ज णामकम्मं, बहुविहा णिप्फायदि रयणा ॥114॥

जिस कर्म के उदय से बहुत रूप से युक्त देह को जीव प्राप्त करते हैं वा बहु प्रकार की रचना निष्पन्न होती है वह नामकर्म जानना चाहिए।

नाम कर्म भेद

णामकम्मं दु णेयं, तिउणदि-विहं च अपिंडरूवेणं।
बायालीस-विहं चिअ, णियमादो पिंडरूवेणं ॥115॥

नामकर्म नियम से अपिंड रूप से 93 प्रकार का और पिंड रूप से 42 प्रकार का जानना चाहिए।

गइ - जादि - देह - बंधण - संघाद - संठाणंगोवंगाणि।
संघडणं फास - वण्ण - गंध - रस - आणुपुव्वी तहा॥116॥
अगुरुलहुग - मुस्सासो, परघादुवघाद - आदवुज्जोदा।
णिम्माणं तित्थयरं, विहाओगदी णामकम्मं॥117॥

पत्तेय-तस-पज्जत्त-सुहुम-थिर-सुह-सुहग-सुस्सरा तहा।
आदेयं जसकित्ती, सेदरा बादालं पिंडा॥118॥

गति, जाति, देह, बंधन, संघात, संस्थान, अंगोपांग, संहनन, स्पर्श, वर्ण, गंध, रस, आनुपूर्वी, अगुरुलघुक, उच्छ्‌वास, परघात, उपघात, आतप, उद्योत, निर्माण, तीर्थंकर, विहायोगति, प्रत्येक, त्रस, पर्याप्त, सूक्ष्म, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति व इनके इतर अर्थात् साधारण, स्थावर, अपर्याप्त, बादर, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति ये नामकर्म की बयालीस पिंड प्रकृतियाँ हैं।

गति नामकर्म स्वरूप व भेद

जस्स कम्मोदयेणं, अप्पा भवंतरं गच्छदि तं वा।
गदिकम्म - मेगभवादु, लद्धि-कारणं अण्णभवस्स॥119॥

जिस कर्म के उदय से आत्मा भवांतर में गति करती है अथवा एक भव से अन्य भव की उपलब्धि का कारण गति नामकर्म है।

णेया चदुविहा गदी, णिरय-तिरिय-णर-देवाण भेयादु।
सगणामणुसारेणं, देदि फलं चिअ गदि-चउक्कं॥120॥

नरक, तिर्यंच, मनुष्य व देव के भेद से गति चार प्रकार की जाननी चाहिए। गति चतुष्क निश्चय से स्व नाम के अनुसार फल देती है।

नरक गति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवस्स होदि णारयपज्जाओ।
णिरयगदी णेया सा, घोरदुक्खकारणं णियमा॥121॥

जिस कर्म के उदय से जीव की नारक पर्याय होती है वह नियम से घोर दुःख की कारण नरक गति जाननी चाहिए।

तिर्यंच गति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवस्स हवेदि तिरियपज्जाओ।
तिरियगदिं लहंति तं, मिच्छाइट्ठी वंचणाए॥122॥

जिस कर्म के उदय से जीव की तिर्यंच पर्याय होती है (वह तिर्यंच गति जाननी चाहिए) उस तिर्यंच गति को मिथ्यादृष्टि मायाचारी से प्राप्त करते हैं।

मनुष्य गति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवस्स होदि माणुस-पज्जाओ।
मणुसगदी सा णेया, मोक्खकारणं इमा मेत्तं॥123॥

जिस कर्म के उदय से जीव की मनुष्य पर्याय होती है वह मनुष्य गति जाननी चाहिए। मात्र यही गति मोक्ष का भी कारण है।

देवगति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, अणिमाइ-इड्ढिदिव्वकायजुत्तं।
लहदि देवपज्जायं, देवगदी सा मुणेदव्वा॥124॥

जिस कर्म के उदय से जीव अणिमा आदि आठ ऋद्धि व दिव्य शरीर से युक्त देव पर्याय को प्राप्त करता है वह देवगति जाननी चाहिए।

जाति नामकर्म स्वरूप व भेद

णाणाजीवाण होदि, एयरूवदसा इंदियवेक्खाइ।
वा सारिसपरिणामो, पणविहा जादी णादव्वा॥125॥

नाना जीवों की इंद्रिय की अपेक्षा से एकरूप दशा होती है अथवा जीवों के सदृश परिणाम जाति जाननी चाहिए। वह जाति पाँच प्रकार की है।

एकेन्द्रिय जाति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, लहंति जीवा फासक्खं मेत्तं।
सा एगिंदियजादी, मुणेदव्वा जिणसमयेणं॥126॥

जिस कर्म के उदय से जीव मात्र एकेन्द्रिय (स्पर्शन) को प्राप्त करते हैं वह जिन शास्त्र से एकेन्द्रिय जाति जाननी चाहिए।

द्वीन्द्रिय जाति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, फासरसणिंदियसंजुदा जीवा।
सा बेइंदिय-जादी, णिद्दिट्ठा जिणवरिंदेहिं॥127॥

जिस कर्म के उदय से जीव स्पर्शन व रसना इंद्रिय से युक्त होते हैं वह तीर्थंकरों के द्वारा दो इंद्रिय जाति निर्दिष्ट की गई है।

त्रीन्द्रिय जाति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, फास - रसणा - घाणक्खेहि जुत्ता।
जीवा सा तेइंदिय - जादी णादव्वा बुहेहिं॥128॥

जिस कर्म के उदय से जीव स्पर्शन, रसना व घ्राणेन्द्रिय से युक्त होते हैं वह बुधजनों के द्वारा तीन इंद्रिय जाति जाननी चाहिए।

चतुरिन्द्रिय जाति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, फास-रसणा-घाण-चक्खु-अक्खेहि।
जीवा जुत्ता सा चिय, चउरिंदिय - जादी णेया दु॥129॥

जिस कर्म के उदय से जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण व चक्षु इंद्रियों से युक्त होते हैं वह चतुरिंद्रिय जाति जाननी चाहिए।

पंचेन्द्रिय जाति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, फास-रसणा-घाण-चक्खु-कण्णेहि॥
पंचिंदिय - जुद - जीवा, होंति सा पंचिंदिय - जादी॥130॥

जिस कर्म के उदय से जीव स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण इन पाँच इंद्रियों से युक्त होते हैं वह पंचेन्द्रिय जाति कहलाती है।

शरीर नामकर्म स्वरूप

भवस्स मूलं देहं, देहं विणा भवसुहदुहाणि णत्थि।
संभवो जस्सुदयेण, जीव - देहो सरीर - कम्मं॥131॥

शरीर (देहासक्ति) संसार का मूल है। देह के बिना संसार के सुख-दुःख संभव नहीं हैं। जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर होता है वह शरीर नामकर्म कहलाता है।

शरीर नामकर्म भेद

ओरालिय - वेगुव्विय - आहारग - तेजस - कम्माणाणं।
भेयादु पंचविहाणि, सरीराइं णादव्वाइं॥132॥

औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस व कार्माण के भेद से शरीर पाँच प्रकार के जानने चाहिए।

औदारिक शरीर स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवा लहंति ओरालियदेहं।
तं ओरालियं णाम-कम्मं पज्जरंते णाणी॥133॥

जिस कर्म के उदय से जीव औदारिक देह प्राप्त करते हैं ज्ञानी उसे औदारिक शरीर नामकर्म कहते हैं।

जस्स कम्मोदयेणं, सय ओरालिय - सरीर - रूवेणं।
परिणमंति ओरालिय - माहार - वग्गणा - खंधा दु॥134॥

जिस कर्म के उदय से आहार वर्गणा के स्कंध औदारिक शरीर रूप से परिणमित होते हैं वह औदारिक शरीर नामकर्म कहलाता है।

औदारिक शरीर भेद

ओरालियं बेविहं, सुहुम-थूल-भेयादो णादव्वं।
तसाण हवेदि थूलं, थावराण सुहुम-थूलं वा॥135॥

सूक्ष्म व स्थूल के भेद से औदारिक शरीर दो प्रकार का जानना चाहिए। त्रसों के स्थूल व स्थावरों के स्थूल या सूक्ष्म औदारिक शरीर होता है।

औदारिक शरीर स्वामी

णर-तिरियाण सरीरं, हवेदि ओरालियं च णियमेणं।
गब्भज - सम्मुच्छणाण, ओरालियं दु मुणेदव्वं॥136॥

मनुष्य व तिर्यंचों का शरीर नियम से औदारिक होता है। गर्भज व सम्मूर्च्छनों के औदारिक शरीर जानना चाहिए।

वैक्रियक शरीर स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सय वेगुव्विय - सरीर - रूवेणं।
परिणमंति वेगुव्विय - माहार - वग्गणा - खंधा दु॥137॥

जिस कर्म के उदय से आहार वर्गणा के स्कंध वैक्रियक शरीर रूप से परिणत होते हैं वह वैक्रियक शरीर नामकर्म कहलाता है।

देव-णेरइयाणं च, सरीरं खलु वेउव्वियं हवेदि।
णेव रुंधदे णेव दु, थंभदि वेउव्वियं कया वि॥138॥

देव व नारकियों के निश्चय से वैक्रियक शरीर होता है। वह वैक्रियक शरीर न कभी भी किसी को रोकता है न किसी से रुकता है।

आहारक शरीर स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सय आहारग - सरीर - रूवेणं।
परिणमंति आहारग - माहार - वग्गणा - खंधा दु॥139॥

जिस कर्म के उदय से आहार वर्गणा के स्कंध आहारक शरीर रूप से परिणत होते हैं वह आहारक शरीर नामकर्म कहलाता है।

पमत्तसंजदो रयदि, जस्स सरीरस्स आहारगं तं॥
सुहुमपदत्थं णादुं, असंजम - परिहरणत्थं वा।140॥

अथवा सूक्ष्म पदार्थों को जानने के लिए व असंयम के परिहार के लिए प्रमत्त संयत जिस शरीर की रचना करते हैं वह आहारक शरीर कहलाता है।

संका - णिवारणट्ठं, पंचकल्लाणेसु गमणट्ठं तं।
जिणगेह - वंदणट्ठं, णिस्सरदि संजद - देहादो॥141॥

वह आहारक शरीर शंका के निवारण, पंचकल्याणकों में गमन व जिन चैत्यालयों की वंदना के लिए संयतों की देह से निःसरित होता है।

सत्तमगुणट्ठाणम्मि, तं बंधदे विसेससंजमीणं।
छट्ठमगुणट्ठाणम्मि, उदयो तस्स होदि णियमादु॥142॥

उस आहारक शरीर का बंध विशेष संयमियों के नियम से सप्तम गुणस्थान में होता है व षष्टम गुणस्थान में उसका उदय होता है।

तैजस शरीर स्वरूप

जस्सुदयेणं देहे, कंती हवदि तेजसं देहं तं।
सव्वसंसारिजीवा, धरंते तेजस - सरीरं दु॥143॥

जिस कर्म के उदय से देह में कांति होती है, वह तैजस शरीर कहलाता है। सभी संसारी जीव उस तैजस शरीर को धारण करते हैं।

जस्स तेजस-वग्गणा-खंधा परिणमंति कम्मुदयेणं।
तेजस - देह - रूवेण, तेजस - सरीरं तं णेयं॥144॥

जिस कर्म के उदय से तैजस वर्गणा के स्कंध तैजस देह रूप से परिणत होते हैं वह तैजस शरीर नामकर्म जानना चाहिए।

कार्माण शरीर स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवा लहंति कम्माण सरीरं।
कम्माणसरीरं तं, आवरणाइकम्मखंधा दु॥145॥

जिस कर्म के उदय से जीव कार्माण शरीर या आवरण आदि कर्म स्कंधों को प्राप्त करते हैं वह कार्माण शरीर नामकर्म कहलाता है।

सव्वसंसारीण सय, हवंति तेजस - कम्माण - देहाणि।
विग्गहगदीए दोण्णि, एदाणि सरीराइं हि चिय॥146॥

सर्व संसारी जीवों के सदा तैजस व कार्माण देह होती है। विग्रह गति में ये दो ही शरीर होते हैं।

बंधन नामकर्म स्वरूप

अण्णोण्णेण बंधंति, देहवग्गणा जस्स कम्मुदयेण।
बंधणकम्मं पणहा, ओरालियाइ - भेयादो दु॥147॥

जिस कर्म के उदय से देह वर्गणाएँ परस्पर में बंधती हैं वह बंधन नामकर्म है। औदारिक आदि के भेद से वह पाँच प्रकार का है।

औदारिक शरीर बंधन स्वरूप

बंधंते परमाणू, परोप्परे ओरालिय - सरीरस्स।
जस्स कम्मोदयेणं, ओरालिय - देह - बंधणं दु॥148॥

जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर के परमाणु परस्पर में बंध को प्राप्त होते हैं वह औदारिक शरीर बंधन नामकर्म है।

वैक्रियक शरीर बंधन स्वरूप

बंधंते परमाणू, परोप्परे वेगुव्विय - सरीरस्स।
जस्स कम्मोदयेणं, वेगुव्विय - देह - बंधणं दु॥149॥

जिस कर्म के उदय से वैक्रियक शरीर के परमाणु परस्पर में बंध को प्राप्त होते हैं वह वैक्रियक शरीर बंधन नामकर्म है।

आहारक शरीर बंधन स्वरूप

बंधंते परमाणू, परोप्परे दु आहरग - सरीरस्स।
जस्स कम्मोदयेणं, आहारग - देह - बंधणं दु॥150॥

जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर के परमाणु परस्पर में बंध को प्राप्त होते हैं वह आहारक शरीर बंधन नामकर्म कहलाता है।

अप्पडिहय - सुहुम - धवल - सुट्ठु - सुंदर - आहारगदेहस्स।
अविणाभावी होज्जा, आहारगबंधणं कम्मं।।151।।

आहारक बंधन नामकर्म अप्रतिहत, सूक्ष्म, धवल, श्रेष्ठ व सुंदर आहारक देह के अविनाभावी होता है।

तैजस शरीर बंधन स्वरूप

बंधंते परमाणू, परोप्परे चिय तेजस-सरीरस्स।
जस्स कम्मोदयेणं, तेजस - देह - बंधण - कम्मं।।152।।

जिस कर्म के उदय से तैजस शरीर के परमाणु परस्पर में बंध को प्राप्त होते हैं वह तैजस शरीर बंधन नामकर्म कहलाता है।

कार्माण शरीर बंधन स्वरूप

बंधंते परमाणू, परोप्परे दु कम्माण-सरीरस्स।
जस्स कम्मोदयेणं, कम्माण - देह - बंधणं चिय।।153।।

जिस कर्म के उदय से कार्माण शरीर के परमाणु परस्पर में बंध को प्राप्त होते हैं वह कार्माण शरीर बंधन नामकर्म कहलाता है।

संघात नामकर्म स्वरूप

हवंति छिद्द-रहिदा दु, एगबंधणबद्धसरीर-खंधा।
जस्स कम्मुदयेण तं, संघादणामकम्मं जाण।।154।।

जिस कर्म के उदय से एक बंधन बद्ध शरीर के स्कंध छिद्र रहित होते हैं वह संघात नामकर्म जानना चाहिए।

संघात नामकर्म भेद

ओरालिय - वेगुव्विय - आहारग - तेजस - कम्माणाणं।
भेयादो पंचविहं, संघादं संबुज्झिदव्वं।।155।।

औदारिक, वैक्रियक, आहारक, तैजस व कार्माण के भेद से संघात नामकर्म पाँच प्रकार का जानना चाहिए।।

औदारिक संघात स्वरूप

बंधणबद्धोरालिय - सरीरखंधा - छिद्दरहिदा होज्ज।
जस्स कम्मुदयेण तं, ओरालिय - संघादं जाण।।156।।

जिस कर्म के उदय से बंधन बद्ध औदारिक शरीर के स्कंध छिद्र रहित होते हैं वह औदारिक संघात नामकर्म जानना चाहिए।

वैक्रियक संघात स्वरूप

छिद्दविहीणा बंधणबद्धवेगुव्विय - सरीर - खंधा दु।
जस्स कम्मुदयेण तं, वेगुव्विय - संघादं होज्ज।।157।।

जिस कर्म के उदय से बंधन बद्ध वैक्रियक शरीर के स्कंध छिद्र रहित होते हैं वह वैक्रियक संघात नामकर्म कहलाता है।

आहारक संघात स्वरूप

बंधणबद्धाहारग - सरीर - खंधा होज्ज छिद्दरहिदा।
जस्स कम्मुदयेण तं, आहारग - संघादं जाण।।158।।

जिस कर्म के उदय से बंधन बद्ध आहारक शरीर के स्कंध छिद्र रहित होते हैं वह आहारक संघात नामकर्म जानना चाहिए।

तैजस संघात स्वरूप

छिद्दविहीणा बंधण - बद्धतेजससरीरखंधा होज्ज।
जस्स कम्मुदयेण तं, तेजस - संघादं जाणेज्ज।।159।।

जिस कर्म के उदय से बंधन बद्ध तैजस शरीर के स्कंध छिद्र रहित होते हैं वह तैजस संघात नामकर्म जानना चाहिए।

कार्माण संघात स्वरूप

बंधणबद्ध - कम्माण - सरीर - खंधा छिद्दरहिदा होज्ज।
जस्स कम्मुदयेण तं, कम्माण - संघादं णेयं॥160॥

जिस कर्म के उदय से बंधन बद्ध कार्माण शरीर के स्कंध छिद्र रहित होते हैं वह कार्माण संघात नामकर्म जानना चाहिए।

अंगोपांग नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, अंगोवंगाण होज्ज णिप्फत्ती।
देहंगोवंगं वा, लहंति अंगोवंगकम्मं॥161॥

जिस कर्म के उदय से अंगोपांगों की निष्पत्ति होती है या जीव शरीर के अंगोपांगों को प्राप्त करते हैं वह अंगोपांग नामकर्म जानना चाहिए।

औदारिक शरीर अंगोपांग स्वरूप

अंगोवंगाणि जस्स, कम्मुदयेण ओरालियदेहस्स।
वक्कमंति ओरालियदेहंगोवंगं जाणेज्ज॥162॥

जिस कर्म के उदय से औदारिक देह के अंगोपांग उत्पन्न होते हैं वह औदारिक शरीर अंगोपांग नामकर्म जानना चाहिए।

वैक्रियक शरीर अंगोपांग स्वरूप

अंगोवंगाणि जस्स, कम्मुदयेण वेगुव्वियदेहस्स।
वक्कमंति - वेगुव्विय - देहंगोवंगं जाणेज्ज॥163॥

जिस कर्म के उदय से वैक्रियक देह के अंगोपांग उत्पन्न होते हैं वह वैक्रियक शरीर अंगोपांग नामकर्म जानना चाहिए।

आहारक शरीर अंगोपांग स्वरूप

अंगोवंगाणि जस्स, कम्मुदयेण आहारगदेहस्स।
वक्कमंति आहारग - देहंगोवंगं जाणेज्ज॥164॥

जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर के अंगोपांग उत्पन्न होते हैं वह आहारक शरीर अंगोपांग नामकर्म जानना चाहिए।

सगसगठाणेसु चिय, सग - सग - उचिदपमाण - णिम्माणं दु।
णिप्फत्ती होज्ज जेण, सरीरस्स अंगोवंगाण।।165।।

जिसके उदय से स्व-स्व स्थानों पर और स्व-स्व उचित प्रमाण शरीर के अंगोपांगों की निष्पत्ति होती है वह निर्माण नामकर्म है।

निर्माण नामकर्म स्वरूप व भेद

जस्स कम्मोदयेणं, जीवस्स बेविहणिम्माणं होंति।
पमाणं ठाणं तहा, तं णिम्माण - कम्मं णेयं।।166।।

जिस कर्म के उदय से जीव के प्रमाण और स्थान दो प्रकार के निर्माण होते हैं वह निर्माण नामकर्म जानना चाहिए।

संस्थान नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, हवेज्ज चिय सरीरस्स आयारो।
संठाण - णामकम्मं, छव्विहं तं हु विआणेज्जा।।167।।

जिस कर्म के उदय से शरीर का आकार होता है वह संस्थान नामकर्म छः प्रकार का जानना चाहिए।

संस्थान नामकर्म भेद

समचउरसं णग्गोह - परिमंडल - सादि - खुज्ज - संठाणं।
वामण - हुंडं छव्विह - संठाण - णामकम्मं जाण।।168।।

समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक, वामन व हुंडक ये छः प्रकार का देह संस्थान नामकर्म जानना चाहिए।

समचतुरस्र संस्थान स्वरूप

उड्ढहमज्झेसुं सम - विभागेण होज्ज सरीरवयवाण।
जस्सुदयेण समरूव - ववत्थावणं समचउरसं।।169।।

जिस कर्म के उदय से ऊर्ध्व, मध्य व अधः भागों में समविभाग के द्वारा शरीर के अवयवों का समरूप व्यवस्थापन होता है वह समचतुरस्र शरीर संस्थान नामकर्म है।

न्यग्रोधपरिमंडल संस्थान स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, वडोव्व देहायारो होज्जा तं।
हेट्ठिमो किसो उड्ढो, विसालो णग्गोहणामं दु॥170॥

जिस कर्म के उदय से देह का आकार वट वृक्ष के समान नीचे से कृश व ऊर्ध्व भाग विशाल होता है वह न्यग्रोधपरिमंडल शरीर संस्थान नामकर्म है।

स्वाति संस्थान स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, देहायारो सप्पवम्मीओव्व।
हेट्ठिमो विसालो तह, किसो उड्ढो हवेदि सादी॥171॥

जिस कर्म के उदय से देह का आकार साँप की बामी के समान नीचे से विशाल तथा उपरिम भाग कृश होता है वह स्वाति संस्थान नामकर्म जानना चाहिए।

कुब्जक संस्थान स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सरीरं होज्ज खुज्जं तं णेयं।
खुज्ज - संठाणं पाव-उदयेणं पप्पोदि जीवो॥172॥

जिस कर्म के उदय से शरीर कूबड़ा होता है वह कुब्जक संस्थान जानना चाहिए। पाप के उदय से ही जीव उसे प्राप्त करता है।

वामन संस्थान स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, वामणदेहं दु हवेदि जीवस्स।
वामणसंठाणं तं, लोयववहारे सुहं णत्थि॥173॥

जिस कर्म के उदय से जीव की वामन (बौनी) देह होती है वह वामन संस्थान नामकर्म कहलाता है। लोक व्यवहार में वह शुभ नहीं होती।

हुंडक संस्थान स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीव-देहो वक्क-विचित्तरूवो।
तं हुंडं संठाणं, पावफलं संबुज्झिदव्वं।।174।।

जिस कर्म के उदय से जीव की देह वक्र, विचित्र रूप होती है वह पाप के फल रूप हुंडक संस्थान जानना चाहिए।

अशुभ संस्थान

णग्गोहपरिमंडलं, सादी खुज्जं वामणं हुंडं च।
पंचविहं संठाणं, असुहमप्पसत्थं जाणेज्ज।।175।।

न्यग्रोधपरिमंडल, स्वाति, कुब्जक, वामन व हुंडक ये पाँच प्रकार के संस्थान अशुभ व अप्रशस्त जानने चाहिए।

संहनन स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, होज्ज अत्थीण बंधणं विसेसो।
संघडणं णादव्वं, हवदे दु माणुसतिरियाणं।।176।।

जिस कर्म के उदय से अस्थियों का बंधन विशेष होता है उसे संहनन जानना चाहिए। संहनन मनुष्य, तिर्यंचों के होता है।

संहनन के भेद

संघडणं छव्विहं दु, वज्जरिसहणाराय - णामकम्मं।
वज्जणारायं तहा, णारायमद्धणारायं च।।177।।

कीलियं च असंपत्त - सेवट्टसरीरसंघडणणामं।
पढमं विजहिदूणं दु, सेसाणि असुहप्पसत्थाणि।।178।।

वज्रऋषभनाराच, वज्रनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीलक व असंप्राप्तासृपाटिका ये छः प्रकार का संहनन नामकर्म है। प्रथम संहनन को छोड़कर शेष सभी संहनन अशुभ व अप्रशस्त हैं।

वज्रवृषभनाराच संहनन स्वरूप

जस्स वज्जोव्व अत्थिं, वेट्ठणं कीलियं कम्मोदयेण।
वज्जरिसहणारायं, देहसंघडणणामकम्मं।।179।।

जिस कर्म के उदय से वज्र के समान अस्थि, वेष्टन व कीलक होता है वह वज्रवृषभनाराच शरीर संहनन नामकर्म जानना चाहिए।

वज्रनाराच संहनन स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, वज्जोव्व अत्थिं कीलियं होज्जा।
सामण्णं वेट्ठणं च, वज्जणाराय-संघडणं दु।।180।।

जिस कर्म के उदय से वज्र के समान अस्थि व कीलक होता है और वेष्टन सामान्य होता है वह वज्रनाराच संहनन नामकर्म कहलाता है।

नाराच संहनन स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, णाराएणं कीलिद-अत्थीणं।
संधी होंति णाराय-देह-संघडणं-णामं तं।।181।।

जिस कर्म के उदय से नाराच से कीलित अस्थियों की संधियाँ होती हैं वह नाराच शरीर संहनन नामकर्म है।

अर्द्धनाराच संहनन स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, अत्थिबंधो अद्धकीलिदो होदि।
अद्धणारायकम्मं, संघडणं तं मुणेदव्वं।।182।।

जिस कर्म के उदय से अस्थियों का बंध अर्द्धकीलित होता है वह अर्द्धनाराच संहनन नामकर्म जानना चाहिए।

कीलक संहनन स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, होज्ज वज्जरहिद-अत्थि-कीलिआणि।
कीलिअ-संघडणं तं, णामकम्मं दु मुणेदव्वं॥183॥

जिस कर्म के उदय से वज्र से रहित अस्थि व कीलें होती हैं वह कीलक संहनन नामकर्म जानना चाहिए।

असंप्राप्तासृपाटिका संहनन स्वरूप

सरिसिव-अत्थिं व होंति, असंपत्त-छिराबद्ध-अत्थीइं।
जस्स कम्मोदयेणं, असंपत्तसेवट्टं तं दु॥184॥

जिस कर्म के उदय से सर्प की हड्डियों के समान असंप्राप्त और शिराबद्ध अस्थियाँ होती हैं वह असंप्राप्तासृपाटिका शरीर संहनन नामकर्म है।

संहनन का सद्भाव

कम्मभूमीसु माणुस-तिरियाणं संभवो छसंघडणं।
भोयभूमीसु णियमा, होज्ज वज्जरिसहणारायं॥185॥

कर्मभूमियों में मनुष्य व तिर्यंचों के छः संहनन संभव हैं। भोगभूमियों में नियम से वज्रऋषभनाराच संहनन होता है।

वज्रवृषभनाराच संहनन का महत्व

वज्जरिसहणारायं, खइयसम्मत्त-सत्तमणिरयाणं।
तित्थयर - सुहपइडीइ, णिव्वाण-कारणं जाणेज्ज॥186॥

वज्रवृषभनाराच संहनन क्षायिक सम्यक्त्व, सप्तम नरक, शुभ तीर्थंकर प्रकृति के बंध अथवा निर्वाण का कारण जानना चाहिए।

स्त्रियों के संहनन

इत्थीणं पढम-तिण्णि-संघडणं दु होज्जा णेव कया वि।
णवरि भोगभूमीसुं, इत्थीण पढम-संघडणं हि॥187॥

स्त्रियों के प्रथम तीन संहनन कदापि नहीं होते किन्तु विशेषता यह है कि भोगभूमियों में स्त्रियों के प्रथम संहनन ही होता है।

संहनन का अभाव

एक्कं अवि संघडणं, णो होदि सुरणेरइय - थावराण।
जम्हा ताण सरीरं, सव्वदा खलु अत्थि-विहीणं॥188॥

देव, नारकी व स्थावरों के एक भी संहनन नहीं होता इसलिए उनका शरीर सर्वदा हड्डियों से विहीन ही होता है।

स्पर्श नामकर्म स्वरूप व भेद

जस्स कम्मोदयेणं, जीवाणं उप्पज्जदे फासं दु।
फासणामकम्मं तं, अट्ठविहं चिय मुणेदव्वं॥189॥

जिस कर्म के उदय से जीवों के स्पर्श की उत्पत्ति होती है वह स्पर्श नामकर्म आठ प्रकार का जानना चाहिए।

कक्कस-मिदु-गुरू लहू, णिद्धं रुक्खं सीदं तह उण्हं।
फासं दु णामकम्मं, अट्ठविहं चिय विआणेज्जा॥190॥

स्पर्श नाम कर्म आठ प्रकार का जानना चाहिए–कर्कश, मृदु, गुरु, लघु, स्निग्ध, रुक्ष, शीत तथा उष्ण।

कर्कश स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, कक्कस-भावो सरीरपोग्गलाण।
होदि कक्कसं णामं, कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥191॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों के कर्कशता होती है वह कर्कश नामकर्म जानना चाहिए।

मृदु स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, मिदूभावो सरीरपोग्गलाणं।
हवेदि मिदुअं णामं, कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥192॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों के मृदुता होती है वह मृदुक नामकर्म जानना चाहिए।

गुरु स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, गुरुअ-भावो सरीरपोग्गलाणं।
हवेदि गुरुअं णामं, कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥193॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों के गुरुता होती है वह गुरुक नामकर्म जानना चाहिए।

लघु स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, लहुअ-भावो सरीरपोग्गलाणं।
हवेदि लहुअं णामं, कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥194॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों के लघुता होती है वह लघुक नामकर्म जानना चाहिए।

स्निग्ध स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, णिद्धभावो सरीरपोग्गलाणं।
हवेदि णिद्धं णामं, कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥195॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों के स्निग्धता होती है वह स्निग्ध नामकर्म जानना चाहिए।

रूक्ष स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, रुक्खभावो सरीरपोग्गलाणं।
हवेदि रुक्खं णामं, कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥196॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों के रुक्षता होती है वह रुक्ष नामकर्म जानना चाहिए।

शीत स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सीदभावो सरीरपोग्गलाणं।
हवेदि सीदं णामं, कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥197॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों के शीतता होती है वह शीत नामकर्म जानना चाहिए।

उष्ण स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, उण्हभावो सरीरपोग्गलाणं।
हवेदि उण्हं णामं, कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥198॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गलों के उष्णता होती है वह उष्ण नामकर्म जानना चाहिए।

रस नामकर्म भेद व स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सादं लहिदुं सक्कदि वत्थूणं।
रसं णामकम्मं तं, पंचविहं चिय मुणेदव्वं॥199॥

जिस कर्म के उदय से जीव वस्तुओं का स्वाद लेने में समर्थ होता है वह रस नामकर्म पाँच प्रकार का जानना चाहिए।

जस्स कम्मोदयेणं, तित्तंब-कडु-कसाय-महुर-सादं।
तण्णामरसं कमेण, णादव्वं जीवो गहदि तं॥200॥

जिस कर्म के उदय से जीव तीखा, खट्टा, कड़वा, कसायला, मधुर स्वाद को ग्रहण करता है वह क्रम से उस नाम वाला रस जानना चाहिए।

आम्ल नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सरीर-पोग्गला अंबरसेणं दु।
परिणमंति अंबणाम-कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥201॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गल आम्ल रस से परिणत होते हैं वह आम्ल नामकर्म जानना चाहिए।

तिक्त स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सरीर-पोग्गला तित्तरसेणं दु।
परिणमंति तित्तणाम-कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥202॥

जिसकर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गल तिक्त रस से परिणत होते हैं वह तिक्त नामकर्म जानना चाहिए।

कटुक स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सरीर-पोग्गला चिय कडु-रसेणं।
परिणमंते कडुणाम-कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥203॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गल कटुक रस से परिणत होते हैं, वह कटु नामकर्म जानना चाहिए।

कषायला स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सरीर-पोग्गला कसाय-रसेणं
परिणमंते कसायं, णामं संबुज्झिदव्वं तं॥204॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गल कषायला रस से परिणत होते हैं वह कषाय नामकर्म जानना चाहिए।

मधुर रस स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सरीर-पोग्गला चिय महुर-रसेण।
परिणमंति महुरणाम-कम्मं संबुज्झिदव्वं तं॥205॥

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्गल मधुर रस से परिणत होते हैं वह मधुर नामकर्म जानना चाहिए।

गंध नामकर्म स्वरूप व भेद

जस्स कम्मोदयेणं, गंधं गहेदुं सक्कदे जीवो।
गंधणामकम्मं तं, दुविहं सुगंधं दुग्गंधं॥206॥

जिस कर्म के उदय जीव गंध ग्रहण करने में समर्थ होता है वह गंधनामकर्म दुर्गंध व सुगंध के भेद से दो प्रकार का होता है।

सुगंध व दुर्गंध नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सुरहिगंधं सक्कंते गहेदुं।
जीवा दु तं सुगंधं, तव्विवरीयं च दुग्गंधं।।207।।

जिस कर्म के उदय से जीव सुरभि गंध को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं यह सुगंध नामकर्म जानना चाहिए, उससे विपरीत दुर्गंध नामकर्म है।

वर्ण नामकर्म स्वरूप व भेद

जस्स कम्मोदयेणं, सेदादि-वण्णं गहिदुं सक्कंति।
जीवा तं वण्णणाम-कम्मं हु पंचविहं णेयं।।208।।

जिस कर्म के उदय से जीव श्वेत आदि वर्ण को ग्रहण करने में समर्थ होते हैं वह वर्ण नामकर्म पाँच प्रकार का जानना चाहिए।

किण्हं णीलं रत्तं, पीदं सेदं तं संविदिदव्वं।
ताणंतरबहुभेया, सया अत्तकहिदागमेणं।।209।।

आप्त कथित आगम से वह वर्ण नामकर्म कृष्ण, नील, रक्त (लाल), पीत व श्वेत सदा पाँच प्रकार का जानना चाहिए। उनके अंतर भेद बहुत जानने चाहिए।

जस्स कम्मोदयेणं, रत्तादि-वत्थूणि कप्पदि णादुं।
जीवो हु तं तण्णाम-वण्णं णामकम्मं णेयं।।210।।

जिस कर्म के उदय से जीव लाल आदि वस्तुओं को जानने में समर्थ होता है वह उस नाम वाला वर्ण नामकर्म जानना चाहिए।

कृष्ण वर्ण स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, उप्पज्जदे सरीरपोग्गलाणं।
किण्हवण्णो जाणेज्ज, किण्हवण्णणामकम्मं तं।।211।।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों का कृष्णवर्ण उत्पन्न होता है वह कृष्ण वर्ण नामकर्म जानना चाहिए।

नील वर्ण स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, पच्चायादि सरीरपोग्गलाणं।
णीलवण्णो जाणेज्ज, णीलवण्णणामकम्मं तं।।212।।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों का नीलवर्ण उत्पन्न होता है वह नीलवर्ण नामकर्म जानना चाहिए।

रक्त वर्ण स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, पच्चायादि सरीरपोग्गलाणं।
रत्तवण्णो जाणेज्ज, रत्तवण्णणामकम्मं तं।।213।।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों का लाल वर्ण उत्पन्न होता है वह लाल वर्ण नामकर्म जानना चाहिए।

पीत वर्ण स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, पच्चायादि सरीरपोग्गलाणं।
पीदवण्णो जाणेज्ज, पीदवण्णणामकम्मं तं।।214।।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों का पीतवर्ण उत्पन्न होता है वह पीतवर्ण जानना चाहिए।

श्वेत वर्ण स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, पच्चायादि सरीरपोग्गलाणं।
सेदवण्णो जाणेज्ज, सेदवण्णणामकम्मं तं।।215।।

जिस कर्म के उदय से शरीर संबंधी पुद्‌गलों का श्वेतवर्ण उत्पन्न होता है उसे श्वेतवर्ण जानना चाहिए।

आनुपूर्वी नामकर्म स्वरूप व भेद

विग्गहगदीए पुव्व-विजहंत-सरीरायारो हवेदि।
जस्स कम्मोदयेणं, तं चिय आणुपुव्वी णामं।।216।।

जिस कर्म के उदय से विग्रहगति में पूर्व छोड़े हुए शरीर का आकार होता है उसे आनुपूर्व नामकर्म जानना चाहिए।

चउविहा आणुपुव्वी, माणुस-सुर-णिरय-तिरियाणुपुव्वी।।
तण्णामाणुपुव्वी दु, जं गदिं च गच्छदे जीवो।।217।।

आनुपूर्वी चार प्रकार की होती है—मनुष्य, देव, नरक व तिर्यंचानुपूर्वी। जिस गति में जीव जाता है वह उस नाम वाला आनुपूर्वी नामकर्म जानना चाहिए।

नरकगत्यानुपूर्वी स्वरूप

णिरयं गच्छंतस्स य, अप्पपदेसायारो विग्गहम्मि।
गदिणिरयाणुपुव्वी दु, जस्सुदयेण पुव्वदेहं व।।218।।

जिस कर्म के उदय से नरक को जाते हुए जीव के विग्रह गति में आत्म प्रदेश के आकार पूर्व देह के समान होते हैं वह नरकगत्यानुपूर्वी जाननी चाहिए।

देवगत्यानुपूर्वी स्वरूप

सुरगदिं गच्छंतस्स, अप्पपदेसायारो विग्गहम्मि।
गदिसुराणुपुव्वी सा, जस्सुदयेण पुव्वदेहं व।।219।।

जिस कर्म के उदय से देव गति को जाते हुए जीव के विग्रह गति में आत्म प्रदेश के आकार पूर्व देह के समान होते हैं वह देवगत्यानुपूर्वी जाननी चाहिए।

मनुष्यगत्यानुपूर्वी स्वरूप

णरगदिं गच्छंतस्स, अप्पपदेसायारो विग्गहम्मि।
गदिणराणुपुव्वी सा, जस्सुदयेण पुव्वदेहं व।।220।।

जिस कर्म के उदय से मनुष्य गति को जाते हुए जीव के विग्रह गति में आत्म प्रदेश के आकार पूर्व देह के समान होते हैं वह मनुष्यगत्यानुपूर्वी है।

तिर्यंचगत्यानुपूर्वी स्वरूप

पसुगदिं गच्छंतस्स, अप्पपदेसायारो विग्गहम्मि।
गदितिरियाणुपुव्वी दु, जस्सुदयेण पुव्वदेहं व॥221॥

जिस कर्म के उदय से तिर्यंच गति को जाते हुए जीव के विग्रह गति में आत्म प्रदेश के आकार पूर्व देह के समान होते हैं वह तिर्यंचगत्यानुपूर्वी जाननी चाहिए।

अगुरुलघु नामकर्म स्वरूप

देहो णो होदि गुरू, अयसपिंडोव्व कम्मुदयेण जस्स।
लहू अक्कतूलोव्व य, अगुरुलहुणामकम्मं जाण॥222॥

जिस कर्म के उदय से शरीर लोहपिंड के समान भारी व अर्कतूल के समान हल्का नहीं होता है उसे अगुरुलघु नामकर्म जानना चाहिए।

उपघात स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सघादगा हवंति देहावयवा।
उवघादणामकम्मं, तं जहा सिंगं थूलुदरं॥223॥

जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव स्वघात करने वाले होते हैं वह उपघात नामकर्म जानना चाहिए जैसे सींग, स्थूल उदर आदि।

परघात स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, परघादगा होंति देहावयवा।
परघादं तं णेयं, जह सीहादीसु णहदंता॥224॥

जिस कर्म के उदय से शरीर के अवयव पर का घात करने वाले होते हैं वह परघात नामकर्म जानना चाहिए जैसे सिंहादिकों में नख, दंत इत्यादि।

आतप स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, देहप्पहा हवेदि उण्हरूवो।
शरीरे आदवो वा, आदवणामकम्मं णेयं॥225॥

जिस कर्म के उदय से शरीर की प्रभा उष्ण रूप होती है अथवा शरीर में आतप होता है वह आतपनामकर्म जानना चाहिए।

विज्जंत-पुढविकाइय-जीवाण होदि आइच्चविमाणे।
आदवणामकम्मस्स, उदयो सव्वदा णियमादो॥226॥

सूर्य के विमान में विद्यमान पृथ्वीकायिक जीवों के नियम से सर्वदा आतप नामकर्म का उदय होता है।

उद्योत स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, देहप्पहा होदि सीयलरूवो।
देहे उज्जोदो वा, उज्जोदणामकम्मं जाण॥227॥

जिस कर्म के उदय से देह की प्रभा शीतल रूप होती है अथवा शरीर में उद्योत होता है उसे उद्योत नामकर्म जानना चाहिए।

विज्जंत-पुढविकाइय-जीवाणं चंदाइविमाणेसुं।
उदयो संविदिदव्वो, उज्जोदणामकम्मस्स सय॥228॥

चंद्रादि विमानों में विद्यमान पृथ्वीकायिक जीवों के सदा उद्योत नामकर्म का उदय जानना चाहिए।

विहायोगति स्वरूप व भेद

जस्स कम्मोदयेणं, होदि आयासे गमणं जीवस्स।
विहाओगदी णेया, बेविहा पसत्थप्पसत्था॥229॥

जिस कर्म के उदय से आकाश में जीव का गमन होता है वह विहायोगति प्रशस्त व अप्रशस्त दो प्रकार की जाननी चाहिए।

प्रशस्त विहायोगति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, हवेदि पसत्थगमणविही सुहा य।
पसत्थविहाओ गदी, दु सीह-कुंजर-वसहाणं व॥230॥

जिस कर्म के उदय से सिंह, कुंजर और बैल के समान शुभ प्रशस्त गमन विधि होती है वह प्रशस्तविहायोगति जाननी चाहिए।

अप्रशस्त विहायोगति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, हवेदि असुहप्पसत्थ - गमणविही।
खरोट्टसियालाणं व, अप्पसत्थविहाओ गदी दु॥231॥

जिस कर्म के उदय से गधे, ऊँट व सियाल के समान अशुभ, अप्रशस्त गति होती है वह अप्रशस्त विहायोगति जाननी चाहिए।

उच्छ्‌वास नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, उस्ससदे णिस्ससदे तह जीवो।
उस्सास-णामकम्मं, तं संविदिदव्वं णाणीहि॥232॥

जिस कर्म के उदय से जीव श्वांस लेता व छोड़ता है वह ज्ञानियों के द्वारा उच्छ्‌वास नामकर्म जानना चाहिए।

प्रत्येक नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, देहेगस्स सामी होदि एगो।
पत्तेयणामकम्मं, णिद्दिट्ठं सव्वदंसीहिं॥233॥

जिस कर्म के उदय से एक शरीर का एक स्वामी होता है वह सर्वदर्शियों के द्वारा प्रत्येक नामकर्म निर्दिष्ट किया गया है।

साधारण नामकर्म स्वरूप

एगदेहस्स सामी, होंति अणंता जस्स कम्मुदयेण।
साहारणं दु णामं, कम्मं मुणेदव्वं बुहेहि॥234॥

जिस कर्म के उदय से एक देह के स्वामी अनंत जीव होते हैं वह बुधजनों के द्वारा साधारण नामकर्म जानना चाहिए।

त्रस नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवो जम्मदि बेइंदियादीसु।
तं तसं णामकम्मं, तसत्तं पडिवज्जदि अहवा।।235।।

जिस कर्म के उदय से जीव द्वीन्द्रियादिकों में जन्म लेता है अथवा त्रसत्व प्राप्त करता है वह त्रसनामकर्म जानना चाहिए।

स्थावर नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवो जम्मदे एगिंदियेसुं।
तं थावरणामं खलु, थावरत्तं पडिवज्जदि वा।।236।।

जिस कर्म के उदय से जीव एकेन्द्रियों में जन्म लेता है अथवा स्थावरत्व को प्राप्त करता है वह स्थावर नामकर्म कहलाता है।

सुभग नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवो होदि सव्वप्पियो लोए।
सोहग्ग-णिव्वत्तयं, वा सुहगणामकम्मं जाण।।237।।

जिस कर्म के उदय से जीव लोक में सर्वप्रिय होता है अथवा सौभाग्य का निर्वर्तक सुभग नामकर्म जानना चाहिए।

दुर्भग नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सदि रूवादिगुणे अप्पीदियरो।
दोहग्गणिव्वत्तयं, होदि दूहगणामकम्मं दु।।238।।

जिस कर्म के उदय से रूपादि गुण होने पर भी जीव अप्रीतिकर होता है अथवा दौर्भाग्य का निर्वर्तक दुर्भग नामकर्म है।

सुस्वर नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवो लहदि कण्णसुह-महुर-सुरं।
सुस्सर-णामकम्मं दु, जाण तं सिद्धंतसत्थेहि॥239॥

जिस कर्म के उदय से जीव कर्णप्रिय, मधुर स्वर को प्राप्त करता है वह सिद्धांत शास्त्रों से सुस्वर नामकर्म जानना चाहिए।

दु:स्वर नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, कक्कस-सरो कण्णदुस्सहो होदि।
खरुट्टादीण अहवा, जीवस्स दुस्सरं कम्मं दु॥240॥

जिस कर्म के उदय से जीव का अथवा गधे, ऊँटादि का स्वर कर्कश या कानों को दुस्सह होता है वह दु:स्वर नामकर्म जानना चाहिए।

शुभ नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, देहावयवा हवंति सुहरूवा।
सिरकरादी पसत्था, सुहणामकम्मं णादव्वं॥241॥

जिस कर्म के उदय से देह के अवयव शुभ रूप होते हैं, सिर, हाथ आदि प्रशस्त होते हैं वह शुभ नामकर्म जानना चाहिए।

अशुभ नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, असुहरूवा होंति देहावयवा।
जीवाण - मप्पसत्था, वा असुहणामं णादव्वं॥242॥

जिस कर्म के उदय से जीवों की देह के अवयव अशुभ रूप या अप्रशस्त होते हैं वह अशुभनामकर्म जानना चाहिए।

स्थूल नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, रुंधदि अण्णं अण्णेण थंभेदि।
जीवो थूलबादरं, देहं लहदे बादरं तं॥243॥

जो दूसरे को रोकता है और अन्य के द्वारा रुकता है ऐसे स्थूल या बादर देह को जिस कर्म के उदय से जीव प्राप्त करता है वह बादर नामकर्म कहलाता है।

सूक्ष्म नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, लहदे अप्पडिघाद-सुहुमकायं।
जीवो तं णादव्वं, सुहुमणामकम्मं समयेण।।244।।

जिस कर्म के उदय से जीव अप्रतिघात, सूक्ष्म काय को प्राप्त करता है वह आगम से सूक्ष्मनामकर्म जानना चाहिए।

स्थिर नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, थेज्जं धादुवधादूण देहम्मि।
थिरभाव-णिव्वत्तयं, हवदि तं थिरणामं अहवा।।245।।

जिस कर्म के उदय से देह में धातु व उपधातुओं की स्थिरता होती है अथवा स्थिर भाव का निर्वर्तक कर्म स्थिर नामकर्म जानना चाहिए।

अस्थिर नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, धादुवधादू अथिरा सरीरस्स।
होंति अथिरणामं तं, अथिरभावणिव्वत्तयं वा।।246।।

जिस कर्म के उदय से शरीर की धातु व उपधातु अस्थिर होती हैं अथवा अस्थिर भाव का निर्वर्तक कर्म अस्थिर नामकर्म जानना चाहिए।

पर्याप्त नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जीवा आहाराइ-पज्जत्तीउ।
लहंति वा पज्जत्ता, होंति तं णामं पज्जत्तं।।247।।

जिस कर्म के उदय से जीव आहारादि पर्याप्तियों को प्राप्त करते हैं अथवा पर्याप्त होते हैं उसे पर्याप्त नामकर्म कहते हैं।

अपर्याप्त नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, पज्जत्तीओ समाणेदुं णेव।
होदि जीवो समत्थो, अपज्जत्तणामकम्मं तं।।248।।

जिस कर्म के उदय से जीव पर्याप्तियों को समाप्त करने में समर्थ नहीं होता वह अपर्याप्त नामकर्म जानना चाहिए।

पर्याप्ति के भेद

पज्जत्ती छव्विहा य, आहार - सरीरिंदियाणपाणो।
भासा मणं च सव्वा, होंति णेव सव्वजीवेसुं।।249।।

पर्याप्ति छः प्रकार की होती हैं—आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा व मन। सर्वजीवों में सभी पर्याप्तियाँ नहीं होती हैं।

जीवों में पर्याप्ति

एइंदियेसु णेया, चत्तारि तहा बेइंदियादो दु।
असण्णि - अंतं पंचं, सण्णीणं छपज्जत्तीओ।।250

एकेन्द्रियों में चार पर्याप्ति, दो इंद्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक पाँच पर्याप्ति व संज्ञी पंचेन्द्रियों के छः पर्याप्तियाँ होती हैं।

आदेय स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, कंतिजुदसरीरं होदि जीवस्स।
पच्चायादि मण्णत्त-मादेयत्तं तमादेयं।।251।।

जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कांतियुक्त होता है अथवा मान्यता व आदेयता उत्पन्न होती है वह आदेय नामकर्म है।

अनादेय स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, कंतिहीणदेहं होदि जीवस्स।
अणादेयत्तं तं दु, पच्चायादे अणादेयं।।252।।

जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कांतिहीन होता है अथवा अनादेयता अर्थात् अनादरणीयता उत्पन्न होती है वह अनादेय नामकर्म जानना चाहिए।

यश:कीर्ति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, जसकित्ती होदि लोए जीवस्स।
जसकित्ती णामं तं, णिद्दिट्ठं गणहरदेवेहि॥253॥

जिस कर्म के उदय से जीव की लोक में यश:कीर्ति होती है वह गणधरदेवों के द्वारा यशकीर्ति नामकर्म निर्दिष्ट किया गया है।

अयश:कीर्ति स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, सुहकज्जाणि किच्चा वि लहंति णो।
जसकित्तिं जीवा तं, अजसकित्ती णामं जाणह॥254॥

जिस कर्म के उदय से जीव शुभ कार्यों के करने पर भी यशकीर्ति प्राप्त नहीं करते वह अयश:कीर्ति नामकर्म जानना चाहिए।

तीर्थंकर नामकर्म स्वरूप

जस्स कम्मोदयेणं, कल्लाणाइ-विहूदि-जुदो जीवो।
तिलोयपुज्जो चिय तं, तित्थयरणामं णादव्वं॥255॥

जिस कर्म के उदय से जीव कल्याणक आदि विभूति से युक्त व त्रिलोकपूज्य होता है वह तीर्थंकर नामकर्म जानना चाहिए।

चतुर्विध कर्म

कम्माणि चउविहाइं, इयरपयारेण भणिदाणि समये।
पोग्गल-जीव-विवागी, भव-विवागी खेत्त-विवागी॥256॥

जिनागम में अन्य प्रकार से कर्म के चार भेद कहे गए हैं—पुद्गल विपाकी, जीवविपाकी, भवविपाकी तथा क्षेत्रविपाकी।

पुद्‌गल विपाकी

पोग्गलिअ-सरीरम्मि य, जाणं कम्मपइडीण फलं होदि।
बेसट्ठी ते पोग्गल - विवागी जिणेण उद्दिट्ठा॥257॥

जिन कर्म प्रकृतियों का फल पुद्‌गल शरीर में प्राप्त होता है वे पुद्‌गल विपाकी प्रकृति हैं, वे जिनेंद्र भगवान् के द्वारा (62) बासठ प्रकार की कही गई हैं।

पंचसरीर-संघाद-बंधणाणि संहणणसंठाणाणि।
अंगोवंगो य वीस-फासादी तहा णिम्माणं॥258॥

अगुरुवघाद - परघाद-आदव - थिर - सुह - पत्तेयदुगं चिय।
णामकम्मस्स सव्वा, पोग्गलविवागी णादव्वा॥259॥

पाँच शरीर, पाँच संघात, पाँच बंधन, छः संहनन, छः संस्थान, तीन अंगोपांग, 20 स्पर्शादि, निर्माण, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, प्रत्येक व साधारण नामकर्म की ये सभी (62) प्रकृतियाँ पुद्‌गल विपाकी जाननी चाहिए।

भव विपाकी

फलं जाण पइडीणं, देवाइ-भवेसु हि पावदि जीवो।
जाणेज्ज चउ-आऊणि, भवविवागी जिणसमयेणं॥260॥

जिन प्रकृतियों का फल जीव देव आदि भवों में ही प्राप्त करता है जिनशासन में वह भवविपाकी प्रकृति जाननी चाहिए। चार आयु भवविपाकी हैं।

क्षेत्रविपाकी

परलोयं गच्छंतो, जाण फलं पावेदि मज्झखेत्ते॥
चउ-आणुपुव्वीओ य, खेत्तविवागी मुणेदव्वा॥261॥

जिन प्रकृतियों का फल परलोक गमन करते हुए जीव के मध्य क्षेत्र में ही प्राप्त होता है वे क्षेत्रविपाकी जाननी चाहिए। चार आनुपूर्वी प्रकृतियाँ क्षेत्रविपाकी हैं।

जीव विपाकी

फलं जाण पइडीणं, जीवा पावंति अणुभवंते वा।
अट्ठोत्तर - सत्तति - अवसेसा जीवविवागी तहा॥262॥

जिन प्रकृतियों का फल जीव अनुभव करते हैं वे जीव विपाकी प्रकृतियाँ कहलाती हैं। शेष अठहत्तर प्रकृतियाँ जीव विपाकी जाननी चाहिए।

चदुघादिकम्माइं दु, बे वेयणिज्जं तहा बेगोदं।
पुण णामकम्मस्स चिय, सत्तावीस - पइडीओ तह॥263॥

चार घातिया कर्मों की 47, वेदनीय की 2, गोत्र की 2 एवं पुनः नामकर्म की 27 प्रकृतियाँ जीव विपाकी होती हैं।

गदी जादी विहायोगदी तित्थयरं तहा उस्सासं।
बादर-पज्जत्त-सुसर-आदेज्ज-जस-तस-सुहगदुगं॥264॥

चार गति, पाँच जाति, दो विहायोगति, तीर्थंकर, उच्छ्वास, बादर-सूक्ष्म, पर्याप्त-अपर्याप्त, सुस्वर-दुःस्वर, आदेय-अनादेय, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति, त्रस-स्थावर, सुभग व दुर्भग ये 27 नामकर्म की प्रकृतियाँ जीवविपाकी जाननी चाहिए।

देशघाती व सर्वघाती

छब्बीस देसघादी-इगवीस-सव्वघादी दु घादीण।
पडिवक्खगुणाण पुण्ण-घादगादो दु सव्वघादी॥265॥

केवलणाणदंसणावरणं णिद्दा बारस-कसाया य।
मिच्छं मिस्स - मबंधे, इगवीस - सव्वघादी जाण॥266॥

घातिया कर्म की छब्बीस प्रकृतियाँ देशघाती और इक्कीस प्रकृतियाँ सर्वघाती होती हैं। अपने प्रतिपक्षभूत गुणों का संपूर्ण रूप से घात करने से ये सर्वघाती जाननी चाहिए। केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण, पाँच निद्रा, बारह कषाय अर्थात् अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व और बंध रहित

(उदय व सत्व) अवस्था में सम्यग्मिथ्यात्व ये इक्कीस प्रकृतियाँ सर्वघाती हैं।

जासुं उदयेसु जीव-गुणा अंसरूवेणं विज्जंते।
ता देसघादि-पइडी, छब्बीस-विहा मुणेदव्वा।।267।।

जिन प्रकृतियों के उदय होने पर भी जीव का गुण अंश रूप में प्रकट रहता है उन्हें देशघाती कहते हैं वह 26 प्रकार की जाननी चाहिए।

णाणावरण - चउक्कं, तिण्णि - दंसणावरण - मंतरायं।
सम्मगं च संजलणं, णवणोकसाया छब्बीसा।।268।।

ज्ञानावरण चतुष्क (मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानावरण) तीन दर्शनावरण, पाँच अंतराय, सम्यक् प्रकृति, संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, नव नोकषाय ये छब्बीस देशघाती प्रकृति जाननी चाहिए।

सम्मामिच्छ-पइडी दु, सम्मत्त-घादगादु सव्वघादी।
णवरि सगगुणट्ठाणे, देसघादीव मुणेदव्वा।।269।।

सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति सम्यक्त्व का घात करने वाली होने से सर्वघाती जाननी चाहिए किन्तु विशेषता यह है कि अपने गुणस्थान में वह देशघाती के समान जाननी चाहिए।

पुण्य-पाप प्रकृति

सादावेयणिज्जं च, उच्चगोदं णर-सुर-तिरियाऊणि।
णामकम्मस्स दु पुण्ण-पइडी तेसट्ठी जाणेज्ज।।270।।

सादा वेदनीय, उच्च गोत्र, मनुष्यायु, देवायु, तिर्यंचायु और नामकर्म की 63 प्रकृतियाँ, ये सदा पुण्य प्रकृतियाँ जाननी चाहिए।

दुगदि - आणुपुव्वी इग - जादी देह - बंधण - संघादाणि।
अंगोवंगाणि पढम - संठाणं पढम - संघडणं।।271।।

आदवुज्जोदगुरुलहु - उस्सास - परघाद - पसत्थगदी य।
णिम्माणं तित्थयरं, तसादी दसगं जाणेज्जा॥272॥

फासाइ - वीस - सहिदा, तेसट्ठी णामस्स पुण्णपइडी।
णेया सु पुण्ण पइडी, इत्थ-मट्ठसट्ठी णाणीहि॥273॥

दो गति (मनुष्य, देव), दो आनुपूर्वी, एक पंचेन्द्रिय जाति, पाँच शरीर, पाँच बंधन, पाँच संघात, तीन अंगोपांग, प्रथम समचतुरस्र संस्थान, प्रथम वज्रवृषभनाराच संहनन, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, उच्छ्वास, परघात, प्रशस्तविहायोगति, निर्माण, तीर्थंकर एवं त्रसादि दशक–त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक शरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति व 20 स्पर्शादि ये नामकर्म की 63 पुण्य प्रकृति हैं। इस प्रकार ज्ञानियों के कुल पुण्य प्रकृति 68 जाननी चाहिए।

पावपइडी सयं चिय, चउघादिकम्माइं च णियमेणं।
असादाणीयगोदं, णिरयाउं सेसा णामस्स॥274॥

पाप प्रकृति नियम से 100 होती हैं। चार घातिया कर्म की 47, असातावेदनीय, नीचगोत्र, नरकआयु और शेष नामकर्म की जाननी चाहिए।

दुगदि - आणुपुव्वी चउ-जादी पणसंठाणसंघडणाणि।
उवघादं दुग्गमणं, साहारणाइ - दसगं तहा॥275॥

फासाइवीस-सहिदा, पण्णासं पावपइडी णामस्स।
उहयरूवा-दु-वीसा, इट्ठणिट्ठ-विसय-गहणादो॥276॥

दो गति (नरक, तिर्यंच), दो आनुपूर्वी, एकेन्द्रियादि चार जाति, अंतिम पाँच संस्थान, अंतिम पाँच संहनन, उपघात, अप्रशस्तविहायोगति, साधारणादि दस–स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति, 20 अशुभ स्पर्श–रस–गंध–वर्ण ये सब 50 नाम कर्म की पाप प्रकृतियाँ हैं। स्पर्शादि 20

प्रकृतियाँ इष्ट-अनिष्ट विषय ग्रहण करने से पुण्य व पाप उभय रूप होती हैं।

मूल प्रकृतियों के सादि-अनादि-ध्रुव-अध्रुव प्रकृति बंध भेद

छक्कम्माणं बंधो, सादी अणादी धुवो अद्धुवो य।
वेयणीयस्स सादिं, अंतरेण तिविहो बंधो दु॥277॥

छह कर्मों का प्रकृति बंध सादि, अनादि, ध्रुव व अध्रुव रूप से चारों प्रकार का होता है किन्तु वेदनीय कर्म का बंध सादि के बिना (अनादि, ध्रुव व अध्रुव) तीन प्रकार का होता है।

आउकम्मस्स बंधो, बेविहो अणादि-धुवं अंतरेण।
इत्थं जिणवयणेहिं, णादव्वो पबुद्धवग्गेहि॥278॥

आयु कर्म का बंध अनादि और ध्रुव के बिना दो प्रकार का होता है। इस प्रकार से प्रबुद्ध वर्गों को जिनवचनों से जानना चाहिए।

सादि-अनादि बंध

बंधाभावं होच्चा, पुण बंधदि णेयो सादिबंधो दु।
इदरो अणादिबंधो, होदि सेढि-अणारूढगस्स॥279॥

जिस कर्म के बंध का अभाव होकर वही कर्म पुनः बंधे उसे सादिबंध जानना चाहिए। जो श्रेणी पर नहीं चढ़ा अर्थात् जिसके बंध का अभाव नहीं हुआ उसके अनादिबंध है।

विशेषार्थ–ज्ञानावरण की 5 प्रकृतियों का बंध सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान पर्यन्त के जीव को था, पीछे वही जीव जब उपशान्त कषाय गुणस्थान को प्राप्त हुआ उस समय उसके ज्ञानावरण के बंध का अभाव हुआ। वही जीव पुनः उतरते हुए नीचे सूक्ष्मसाम्पराय में आया उस समय उसके जो ज्ञानावरण का बंध हुआ वही सादिबंध है। जीव जब तक श्रेणी को प्राप्त नहीं होता तब तक उसके अनादिबंध जानना। जैसे–ज्ञानावरण की बंधव्युच्छित्ति सूक्ष्मसाम्पराय के अन्त

समय में होती है उसके अनन्तर जीव उपशान्त कषाय गुणस्थान में पहुँचा, इसके पहले सूक्ष्मसांपराय के अन्त तक ज्ञानावरण का अनादि बंध है।

ध्रुव-अध्रुव बंध

अभव्वजीवाण धुवो, बंधो चिय अणंतकालत्तादो।
भव्वाणं अद्धुवो य, बंधो अंतजुत्तत्तादो॥280॥

अभव्य जीवों के ध्रुव बंध होता है, अनंत कालपना होने से। भव्य जीवों के अध्रुव बंध होता है, अंत युक्तपना होने से।

विशेषार्थ–अभव्य जीवों के ध्रुव बंध होता है क्योंकि निष्प्रतिपक्ष निरन्तर बंधी कर्मप्रकृतियों का बंध अभव्य जीवों के अनादि–अनंत पाया जाता है। भव्य जीवों के बन्ध का अन्त पाया जाता है।

ध्रुव बंधी प्रकृति

पण - णाणावरणं णव - दंसणावरणं तहा मिच्छत्तं।
सोडस - कसाओ भयं, जुगुस्सा तेजस-कम्माणं॥281॥

फास-रस-गंध-वण्णं, अगुरुलहू उवघादं णिम्माणं।
पण - अंतरायं सत्त - चत्तालीसा धुव - पइडी य।282॥

पाँच ज्ञानावरण, नौ दर्शनावरण, मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, तैजस शरीर, कार्माण शरीर, स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, अगुरुलघु, उपघात, निर्माण व पाँच अंतराय, ये 47 ध्रुव बंधी प्रकृतियाँ हैं।

अध्रुव बंधी प्रकृति

सेस - तिहत्तर - पइडी, वीसहिय - सय - बंधजोग्ग - पइडीसु।
अद्धुवपइडी णेया, कल्लाणाय जिणागमेणं॥283॥

बंध योग्य 120 प्रकृतियों में शेष 73 प्रकृति अध्रुवबंधी प्रकृति जिनागम से कल्याण हेतु जाननी चाहिए।

विशेषार्थ–2 वेदनीय, 7 मोहनीय (हास्य, रति, अरति, शोक, 3 वेद) 4 आयु, 4 गति, 5 जाति, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, 6 संस्थान, 6 संहनन, 4 आनुपूर्वी, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास, 2 विहायोगति, त्रस, स्थावर, बादर, सूक्ष्म, पर्याप्त, अपर्याप्त, प्रत्येक, साधारण, स्थिर, अस्थिर, सुभग, दुर्भग, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुःस्वर, आदेय, अनादेय, यशस्कीर्ति, अयशस्कीर्ति, तीर्थंकर तथा 2 गोत्र कर्म ये 73 प्रकृतियाँ अध्रुवबंधी हैं।

निरंतर बंधी प्रकृति

अंतोमुहुत्तं दु, बंधंति णिरंतरं कम्मपइडी।
णिरंतर-बंधि-पइडी, होज्ज चउपण्णासा जा ता।।284।।

जो कर्म प्रकृतियाँ (जघन्य से भी) अंतर्मुहूर्त तक निरंतर रूप से बंधती हैं वे निरंतर बंधी प्रकृति हैं। वे 54 होती हैं।

सत्तचत्तालीसा य, धुवबंधी चउ - आऊ तह तित्थं।
आहारगसरीरं दु, अंगोवंगं णिरंतरं च।।285।।

ध्रुव बंधी 47 प्रकृतियाँ, चार आयु, तीर्थंकर, आहारक शरीर व आहारक अंगोपांग ये 54 निरंतर बंधी प्रकृतियाँ हैं।

सांतर बंधी प्रकृति

जाण कम्मपइडीणं, बंधयालो चिय एगसमयो ता।
असाद-थी-संढ-वेद-अरदी सोगं णिरयगदी य।।286।।

पणसंठाण - संघडण - चउजादी णिरयगच्चाणुपुव्वी।
आदवुज्जोद - थावर - सुहुम - अपज्जत्त - असुहगदी।।287।।

साहारण-मथिर-मसुह-दुब्भग-दुस्सर-अणादेय-अजसं।
संतर-बंधी पइडी, चउतीसा जिणवरुद्दिट्ठा।।288।। (तिग्गं)

जिन कर्म प्रकृतियों का बंधकाल एक समय होता है वे सांतर बंधी प्रकृतियाँ कहलाती हैं। असातावेदनीय, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद, अरति, शोक, नरकगति, पाँच संस्थान, पाँच संहनन, चार जाति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, अशुभ विहायोगति, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अयशःकीर्ति ये 34 सांतरबंधी प्रकृतियाँ जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कही गई हैं।

सांतर-निरंतर बंधी प्रकृति

सादा पुरिसवेदं च, हस्स-रदि-तिरिय-माणुस-देवगदी।
पंचिंदिय - जादी तह, वेगुव्वियोरालिय - देहं॥289॥
समचउरससंठाणं, वेगुव्वियोरालियंगोवंगं॥
वज्जरिसहणारायं, तिरिय - णर - देवाणुपुव्वी य॥290॥
परघादं उस्सासं, तस - बादर - पज्जत्त - पसत्थगदी।
पत्तेयं थिरं सुहं, सुहग - सुस्सरादेय - जसं च॥291॥
णीचुच्चगोदं तहा, संतर - णिरंतर - बंधी पइडी य।
बत्तीसा समयेणं, णादव्वा अत्तकहिदेणं॥292॥

सातावेदनीय, पुरुषवेद, हास्य, रति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति, पंचेन्द्रिय जाति, वैक्रियकशरीर, औदारिकशरीर, समचतुरस्र संस्थान, वैक्रियक अंगोपांग, औदारिक अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, देवगत्यानुपूर्वी, परघात, उच्छ्वास, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रशस्त विहायोगति, प्रत्येकशरीर, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, नीचगोत्र तथा उच्चगोत्र, ये 32 सांतर-निरंतर बंधी प्रकृतियाँ आप्त कथित आगम से जाननी चाहिए।

जीवस्स सुद्धपइडी, सव्वकम्मरहिदा सस्सदसुद्धा।
विहावजुद-संसारी, हवेंति खलु कम्मजुत्तादो॥293॥

जीव की शुद्ध प्रकृति निश्चय से सर्व कर्मों से रहित, शाश्वत शुद्ध है। किन्तु कर्म युक्त होने से संसारी प्राणी विभाव से युक्त होते हैं।

णिच्छयणयेण जीवा, कया वि हवंति णेव कम्मसहिदा।
मुत्तिगा ववहारेण, संसारी कम्मबंधादो।।294।।

निश्चयनय से जीव कभी भी कर्म सहित नहीं होते। व्यवहारनय से कर्मबंध होने से संसारी जीव मूर्त्तिक कहे जाते हैं।

प्रदेश बंध

ज्ञानावरण कर्मास्रव कारण

आगमस्स अवलावो, सूरि-पाढग-मुणीणं णिंदणं च।
गुरु-पडिऊलकिरिया दु, णिसेहणं सत्थवयणाणं।।295।।

सज्झाओ असमयम्मि, सोदुं वदेदुं जिणवयणाणं च।
पमादो णाणुवयरण-दुरुवओगो सिवपहुवेक्खा।।296।।

आयदणाणणादरो, जिणतित्थुच्छेदो णासभावो य।
जिणवयणाणं च सत्थ - विक्कयं दुरग्गहो णियमा।।297।।

सुदणाणावमाणो य, हिंसादि-भावा ताण कज्जाइं।
अलसो सुदब्भासम्मि, देसणा दिव्वज्झुणि-याले।।298।।

जिणसत्थ-मुवदिसित्ता, पढावित्ता धणाइकंखणं वा।
जिणवयणं सगवयणं, उप्पालणं इदरं अहवा।।299।।

जिणवयणस्स अविणओ, णिंदावमाणो णिग्गंथाणं च।
णाणावरण-कम्मस्स, आसवकारणं विआणेज्ज।।300।।

आगम का अपलाप, आचार्य-उपाध्याय व मुनियों की निन्दा करना, गुरु के प्रतिकूल क्रिया, शास्त्र वचनों का निषेध करना, असमय में स्वाध्याय, जिनवचनों के सुनने व बोलने में प्रमाद, ज्ञानोपकरणों का

दुरुपयोग, मोक्षमार्ग की उपेक्षा, आयतनों का अनादर, जिनतीर्थ का उच्छेद, जिनवचनों के नाश का भाव, शास्त्र का विक्रय, दुराग्रह, श्रुतज्ञान का अपमान, हिंसादि भाव व उनके कार्य, श्रुताभ्यास में आलस्य, दिव्यध्वनि के काल में देशना, जिनशास्त्र का उपदेश देकर या पढ़ाकर धन की आकांक्षा करना, जिनवचन को स्ववचन या स्ववचनों को जिनवचन कहना, जिनवचन की अविनय, निर्ग्रंथों की निंदा व अपमान ये ज्ञानावरण कर्म के आस्रव के कारण जानने चाहिए।

सगहिदकंखी जीवा, रक्खेदुं सगप्पं तं उज्झेज्ज।
सुदणाणं विणमेज्जा, माणेज्ज सेवेज्ज भयेज्जा।।301।।

स्वहित के आकांक्षी जीवों को अपनी आत्मा की रक्षा के लिए ज्ञानावरण कर्म के आस्रव के कारणों का त्याग करना चाहिए। श्रुतज्ञान की विनय करनी चाहिए, उसका सम्मान करना चाहिए।

दर्शनावरण कर्मास्रव कारण

विसेसदो णादव्वा, दंसणावरणकम्मस्स हेदू य।
मच्छरो दिवासयणं, कुतित्थ-त्थुदी णयणघादो।।302।।

दिट्ठीइ दुरुवओगो, विग्घण-मलसं जिणगुरुदंसणम्मि।
धम्मधम्मीसु दूसण - मुवेक्खा - भावो गुरुजणेसु।।303।।

णत्थित्त-भावो दुट्ठ-कज्ज-करणं अइणिद्दा पहुदी य।
भवभीरू सज्जणा दु, आमुयेज्ज सय उवरि दोसा।।304।।

दिन में सोना, कुतीर्थ प्रशंसा, मात्सर्य, आँख का घात, दृष्टि का दुरुपयोग, जिनदेव व गुरु दर्शन में विघ्न करना, आलस्य होना, धर्म व धर्मात्माओं में दोष देना, उनके प्रति उपेक्षा भाव, गुरुजनों में नास्तित्व भाव, दुष्ट कार्य करना, अतिनिद्रा आदि विशेष रूप से दर्शनावरण कर्म के आस्रव के कारण जानना चाहिए। संसार में भयभीत सज्जनों को सदा उपर्युक्त दोषों का त्याग करना चाहिए।

दर्शन-मोहनीय कर्मास्रव कारण

जिणदेव-जिणसत्थाण, णिग्गंथाण जिणधम्म-धम्मीणं।
देवगदीइ देवाण, कुव्वेदि अवण्णवादं जो।।305।।

सच्चमग्गदूसगो य, असच्चमग्गपहावगो बंधेदि।
कुतित्थपवट्टगो सो, दंसणमोहणिज्जकम्मं दु।।306।।

जो जिनदेव, जिनशास्त्र, निर्ग्रंथ गुरु, जिनधर्म, धर्मात्माओं वा देवगति के देवों का अवर्णवाद करता है, वह सत्य मार्ग में दोष देने वाला, असत्य मार्ग का प्रभावक, कुतीर्थ प्रवर्तक दर्शनमोहनीय कर्म का बंध करता है।

चारित्रमोहनीय कर्मास्रव कारण

परस्स कसायुक्कस्स-कारगो सयं कसाय-पोसगो य।
वद-तव-धम्म-दूसगो, उवसग्ग-कत्ता संजदेसु।।307।।

सवर संकिलेसकज्जकारगो धम्मकज्जविरोहगो च।
वेरग्ग - धम्मज्झाण - सील - वद - संजमादो चुदो।।308।।

अभक्खसेवी पराण, अवि तस्स पणोल्लयो णियमा।
चरित्त - मोहणिज्जं दु वदाइ - उवेक्खगो बंधेदि।।309।।

दूसरों की कषायों की उत्कृष्टता का कारक, स्वयं कषायों का पोषक, व्रत-तप-धर्म का दूषक, संयतों वा निर्ग्रंथों पर उपसर्ग करने वाला, स्व-पर संक्लेश कार्य-कारक (करने वाला-कराने वाला), धर्मकार्य विरोधक, वैराग्य-धर्मध्यान-शीलव्रत-संयम से च्युत, अभक्ष्य का सेवन करने वाला एवं दूसरों के लिए उसकी प्रेरणा देने वाला, व्रतादि का उपेक्षक नियम से चारित्रमोहनीय कर्म का बंध करता है।

क्रोध कर्मास्रव कारण

कारणाकारणेण तु, कोहणं सगवरकोहणिमित्तं च।
सुइरं ण वेरुज्झणं, कोहजणगुवएसणं तहा॥310॥

परचित्ते कोहजणिद-संकिलेस-उप्पाढण-मिच्चादी।
संबुज्झिदव्वो कोहकसायस्स आसवहेदू य॥311॥

कारण वा अकारण क्रोध करना, स्वयं या दूसरे के क्रोध का निमित्त होना, शीघ्र ही बैर का त्याग नहीं करना, क्रोध को उत्पन्न करने वाला उपदेश करना, दूसरे के चित्त में क्रोध जनित संक्लेश उत्पन्न करना इत्यादि क्रोध कषाय के आस्रव का कारण जानना चाहिए।

मान कर्मास्रव कारण

कस्स अवि सग-वत्थुस्स, उवलद्धीए तहा माण-करणं।
पर-अवमण्णणं सया, खलिदूणं सगसरूवं तह॥312॥

पूया-णाण-कुल-जादि-सुह-बल-इड्ढि-तव-रूव-भवणाणं।
वाहण - सगकलारोग्ग - भोगादीण माणकरणं च॥313॥

कित्ति-पदिट्ठाणं तह, पविट्टिं तह मण-वयण-कायाणं।
इच्चादिं जाणेज्जा, कारणं चिय माणासवस्स॥314॥

किसी की वा अपनी वस्तु की उपलब्धि का मान करना, नित्य दूसरे का अपमान करना, अपने स्वरूप को भूलकर ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, सुख, बल, ऋद्धि, तप, रूप, भवन, वाहन, अपनी कला, आरोग्य तथा भोग आदि का मान करना, कीर्ति व प्रतिष्ठा के लिए मन-वचन-काय की प्रवृत्ति इत्यादि मान के आस्रव का कारण जानना चाहिए।

माया कर्मास्रव कारण

छलसंजुदववहारो, मिच्छाभासणं कवडजुदकिरिया।
हीणाहिय - विणिमाणं, अप्पबहुमुल्ल - मीसणं तह॥315॥

पिंजरजालकूडेसु, पसु-पक्खि-माणव-आइ-बंधणं च।
बहुजीवघादणं तह, मायाकसायासव-हेदू॥316॥

छल सहित व्यवहार करना, मिथ्या भाषण करना, कपट युक्त क्रिया, कम या ज्यादा तौलना, अल्प बहुमूल्य वस्तुओं का मिलाना (जैसे काली मिर्च में पपीते के बीज, घी में डालडा आदि मिलाना) पिंजरा, जाल व कूट में पशु-पक्षी-मनुष्य आदि को बांधना, बहुत जीव घात करना माया कषाय के आस्रव का कारण जानना चाहिए।

लोभ कर्मास्रव कारण

तिव्वभोगकंखाए, आसत्ती परवत्थुगहणभावो।
परजीवाण बहु-वत्थु दंसणभावो दुरुवओगो॥317॥

संग-तिव्वकंखा पर - जीवाणं पणोल्लणं संगहस्स।
लोहकसायस्सासव - कारणं उज्झेज्ज संतीइ॥318॥

तीव्र भोगाकांक्षा में आसक्ति, पर वस्तु के ग्रहण का भाव, पर जीवों के ग्रहण का भाव, बहुत से वस्तुओं को देखने का भाव, पर वस्तुओं का दुरुपयोग, परिग्रह में तीव्राकांक्षा, पर जनों के लिए संग्रह की प्रेरणा करना आदि लोभ कषाय के आस्रव का कारण हैं। शांति के लिए उनका त्याग करना चाहिए।

अणंताणुबंधि-आइ-चउविह-कसायाणं बंध - हेदू।
उत्त-पच्चयाण भाव-तरतमेणं दु मुणेदव्वा॥319॥

अनंतानुबंधी आदि चार प्रकार की कषायों के बंध के हेतु उक्त प्रत्ययों के परिणामों की तरतमता के अनुसार जानना चाहिए।

हास्य कर्मास्रव कारण

अकारणेण हस्सणं, विदूसगं होच्चा हस्सावणं च।
हस्सरूव-वियार-वय-किरिया-कुव्वणं इच्चादी।।320।।

पर-उवहसणं-णिच्चं, हस्सणोकसायस्स विआणेज्जा।
आसवकारणं सया, उज्झिदव्वं भव्वजीवेहि।।321।।

बिना कारण हँसना, विदूषक होकर हँसाना, हास्य रूप विचार, वचन वा क्रिया करना, सदैव पर का उपहास करना इत्यादि हास्य नोकषाय के आस्रव का कारण सदा जानना चाहिए। भव्य जीवों के द्वारा वह त्यागा जाना चाहिए।

रति कर्मास्रव कारण

विचित्तकामकिड्डा य, पेक्खणं कामुवएसणं पराण।
पराकस्सण - भावो दु, परमपीदिकारण-जणणं च।।322।।

अणंगकिड्डा य तिव्व - रायो रायिं पडि हु रमणभावो।
रदि - भावो णादव्वो, आसवहेदू रदिकम्मस्स।।323।।

विचित्र कामक्रीड़ा, स्नेहपूर्वक देखना, दूसरों के लिए काम का उपदेश देना, दूसरों को आकर्षित करने का भाव, परम प्रीति के कारण उत्पन्न करना, अनंग क्रीड़ा, तीव्र राग, रागी के प्रति रमण का भाव, रति का भाव रति कर्म के आस्रव का कारण जानना चाहिए।

अरति कर्मास्रव कारण

परेसुं दोसभावो, देसभाववड्ढणं परवत्थूसु।
वच्छलभावविणासो, धम्मीण गुणा पडि णिरोहो।।324।।

किदकारिदणुमण्णणं, कूरकम्माण संगदी पावीण।
आदी अरदिभावस्स, आसव-हेदू मुणेदव्वा।।325।।

पर व्यक्ति या पर वस्तुओं में द्वेष भाव होना या द्वेष भाव का वर्द्धन करना, वात्सल्य भाव का विनाश, धर्मियों के गुणों के प्रति निरोध, क्रूर कार्यों की कृत-कारित या अनुमोदन करना, पापियों की संगति आदि अरतिभाव के आस्रव के कारण जानने चाहिए।

शोक कर्मास्रव कारण

सवरसोगस्स हेदू - सोगस्सुच्छाहुप्पाढणं तहा।
परपीडणं तहेव य, सयं सोगम्मि परिलीणं च॥326॥

सया हि सोगाकुलस्स, अहिणंदण-मणत्थकारि-कज्जाण।
करणं कंखणं तहा, सोगकम्मस्सासवहेदू॥327॥

स्व-पर शोक का हेतु होना, शोक का उत्साह उत्पन्न करना, दूसरों के लिए दुःख देना, उसी प्रकार स्वयं शोक में लीन रहना, सदा ही शोकाकुलों का अभिनन्दन करना, अनर्थकारी कार्य करना तथा उनकी आकांक्षा करना शोक कर्म के आस्रव के कारण जानने चाहिए।

भय कर्मास्रव कारण

खउरणं तह पराणं, भयुप्पाढण मइ-भीम-दंसणं च।
भयकम्मासव-हेदू, परपीडणं णिद्दयभावो॥328॥

भय से युक्त होना, दूसरों के लिए भय उत्पन्न करना, अति भयानक वस्तु आदि देना, निर्दयभाव और दूसरों को पीड़ा देना ये भय कर्म के आस्रव के कारण हैं।

जुगुप्सा कर्मास्रव कारण

जिणमुणिसुदाण णिंदा, धम्मी पडि तिव्वदुगुंछाभावो।
सुहकज्जाणमुवेक्खा, रुइ-भावो णिंदणीयेसुं॥329॥

मलिणं वत्थुं पस्सिय, तेसुं सगचित्त- परिलीणं जाण।
दुगुंछासव-कारणं, उज्झेज्जा तं णाणी जणा॥330॥

जिनदेव, निर्ग्रंथ मुनि व श्रुत की निंदा, धर्मियों के प्रति तीव्र ग्लानि का भाव, शुभ कार्यों की उपेक्षा, निंदनीय कार्यादि में रुचि भाव, मलिन वस्तु को देखकर उनमें अपना चित्त लीन करना आदि जुगुप्सा के आस्रव का कारण जानना चाहिए। ज्ञानीजनों को ऐसे कार्यों को छोड़ देना चाहिए।

स्त्री वेद कर्मास्रव कारण

अच्च्चंतजिम्हं मदं, कोहो लोहो मिच्छाभासणं च।
देह-मंडणं पुण पुण, मच्छरभावो ण्हाणमादी॥331॥

सुद्धगुणेसु दूसणं, णिंदणं देव-गुरु-धम्म-धम्मीण।
धम्मे अरुइ-भावो, रमणं च परित्थिपुरिसेसुं॥332॥

रुई इत्थिभावेसुं, लीणत्तं इत्थिजोग्गकज्जेसुं।
आसवहेदू णियमा, मुणेदव्वा इत्थिवेदस्स॥333॥

अत्यन्त माया (छल-कपट), अहंकार, क्रोध, लोभ, मिथ्याभाषण, मात्सर्य भाव, पुनः-पुनः देह को सजाना, स्नानादि करना, शुद्ध गुणों में दोष लगाना, देव, गुरु, धर्म व धर्मात्माओं की निंदा करना, धर्म में अरुचि भाव, पर स्त्री वा पुरुष में रमण, स्त्री भावों में रुचि, स्त्री योग्य कार्यों में लीनता आदि नियम से स्त्री वेद के आस्रव के कारण जानने चाहिए।

पुरुषवेद कर्मास्रव कारण

रुई धम्मकज्जेसुं, दाणपूयादीसुं विसेसेणं।
जवतवतित्थजत्तासु, सीलपालणं च सज्झाओ॥334॥

साधम्मीणं सेवा, गुणपसंसा तहा वेज्जावच्चं।
भोयं पडि अरुई दु चिय, हस्स-विलास-रायभावं वि॥335॥

भवदेहादु विरत्ती, इच्चादी सव्वदा मुणेदव्वा।
अत्तकहिद - सत्थेहिं, पुंवेदस्सासव - हेदू हु।।336।।

दान, पूजा, जप, तप, तीर्थयात्रा आदि धार्मिक कार्यों में विशेष रूप से रुचि, शीलपालन, स्वाध्याय, साधर्मियों की सेवा, गुणों की प्रशंसा, वैय्यावृत्य, भोगों के प्रति अरुचि, हास्य, विलास, रागभाव के प्रति भी अरुचि, संसार व शरीर से विरक्ति इत्यादि पुरुष वेद के आस्रव के कारण जिनेंद्र प्रभु द्वारा कहे गए शास्त्रों से सर्वदा जानने चाहिए।

नपुंसकवेद कर्मास्रव कारण

संढजणाण संगदी, अइतिव्व-कोह-माण-मायादी य।
हिंसाइ-कज्जेसुं च, सुरुई तिव्वभोगाकंखा।।337।।

तिव्वमच्छरभावो दु, विरोहो तहा सुधम्म-धम्मीणं।
सहज-अरुइ-भावो चिय, पूयाइ-सुह-धम्मकज्जेसु।।338।।

कामिंदिय-विणासो य, अबंभ-रूवइसंकिलिट्ठभावो।
अणंगकामकिड्डा दु, संढवेदासवकारणं च।।339।।

नपुंसकजनों की संगति, अति तीव्र क्रोध, मान, माया आदि, हिंसा आदि कार्यों में सुरुचि, तीव्र भोगाकांक्षा, तीव्र मात्सर्य भाव, समीचीन धर्म व धर्मियों का विरोध, पूजादि शुभ धर्म कार्यों में सहज अरुचि भाव, कामेन्द्रिय का विनाश, अब्रह्म रूप अति संक्लेश भाव, अनंग कामक्रीडा आदि नपुंसक वेद के आस्रव के कारण जानने चाहिए।

अंतराय कर्मास्रव कारण

विग्घकरणं चिय दाण-लाह-भोगुवभोग-वीरियेसुं च।
अंतरायकम्मासव-हेदू णाणी तमामुयेज्ज।।340।।

दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य में विघ्न करना अंतराय कर्म के आस्रव के कारण जानने चाहिए। ज्ञानियों को उन कारणों को छोड़ना चाहिए।

दानान्तराय कर्मास्रव कारण

सुपत्ताणं ण दाणं, दाणिजणाणं विरोहो अविणयो।
दाणभावणाणासो, दाणस्स उवहासवमाणो॥341॥

विग्घकरणं अण्णेहि, दायिदाहारोसहि-आइ-दाणे।
अभयसत्थुवयरणाण, दाणे अहवा किवणभावो॥342॥

दाणधम्मस्सुवेक्खा,पमादो तह सुहधम्मकज्जेसुं।
असद्धा मुणेदव्वा, दाणंतरायासव-हेदू॥343॥

सुपात्रों को दान नहीं देना, दानीजनों का विरोध, अविनय, दान की भावना का नाश, दान धर्म का उपहास या अपमान, अन्यों के द्वारा किए गए आहार, औषधि आदि दान में विघ्न करना अथवा अभय, शास्त्र व उपकरणों के दान में विघ्न करना, कृपण भाव, दान धर्म की उपेक्षा, शुभ-धर्म कार्यों में प्रमाद व अश्रद्धा दानांतराय कर्म के आस्रव के हेतु जानने चाहिए।

लाभान्तराय कर्मास्रव कारण

अत्थवत्थुमुद्दाणं, दुरुवओगो अण्णजणाण लाहे।
विग्घ-करणं तह असुह - कज्जादो चिय धणाकंखा॥344॥

अवण्णवाद-कुव्वणं, तह णिद्दोस-धण-धणि-सज्जणाणं।
मच्छरभावो लाहं, पस्सित्ता खलु परजणाणं॥345॥

आसवहेदू णेया, सव्वदा लाहंतरायकम्मस्स।
कम्महीणवत्थाए, भव्वजणा आमुयेज्जा तं॥346॥

अर्थ, वस्तु व मुद्राओं का दुरुपयोग, अन्य जनों के लाभ में विघ्न करना, अशुभ कार्य से धन की आकांक्षा, निर्दोष धन-धनी व सज्जनों का अवर्णवाद करना, परजनों के लाभ को देखकर मात्सर्य या ईर्ष्या का भाव होना ये लाभांतराय कर्म के आस्रव के कारण

जानने चाहिए। कर्म हीन अवस्था (सिद्ध दशा) की प्राप्ति के लिए भव्यजनों को इनका त्याग करना चाहिए।

भोगांतराय कर्मास्रव कारण

विग्घकरणं णासणं, वा पराण भोयेसु दुरुवओगो।
भोयसामग्गीणं दु, भोयभुंजणं दुव्विहीए।।347।।

इगवार-सेवणजोग्ग-पसत्थसामग्गीण पंचक्खेहि।
विघादणं दूसणं च, वा सेट्ठभोयणं करिदूण।।348।।

णिंदणीयं भुंजणं, भोयणे वदि-जायग-तिरियादीण।
विग्घकरण-मिच्चादी, भोगंतरायासव-हेदू।।349।।

दूसरों के भोगों में विघ्न करना, भोग सामग्री का नाश करना, उनका दुरुपयोग, खोटी विधि से भोगों को भोगना, पंच इंद्रियों के द्वारा एक बार सेवन के योग्य प्रशस्त सामग्रियों का विघात करना या दोष देना, श्रेष्ठ भोजन को निंदनीय करके खाना, व्रती, याचक, तिर्यंचादि के भोजन में विघ्न करना आदि भोगांतराय कर्म के आस्रव के कारण जानने चाहिए।

उपभोगान्तराय कर्मास्रव कारण

भुंजिदु-मणेगवारं, दुरुवउंजणं जोग्गवत्थूणं च।
वत्थाभूसण-वाहण-भवणिच्चादीणं जाणेज्ज।।350।।

सगिंदियाणं मिच्छा-उवओगो उवभोगसामग्गीण।
पराणं णिंदणं उवभोगंतरायासव-हेदू।।351।।

अनेक बार भोगने में योग्य वस्त्र, आभूषण, वाहन, भवन इत्यादि वस्तुओं का दुरुपयोग करना, अपनी इंद्रियों का व उपभोग सामग्रियों का मिथ्या उपयोग, दूसरों की निंदा करना ये उपभोगांतराय कर्म के आस्रव के कारण जानने चाहिए।

वीर्यान्तराय कर्मास्रव कारण

परसत्तीइ घादणं, दुरुवओगो तहा सगसत्तीए।
अणंगकिड्डा आसत्ति - भावो कुभोयुवभोएसु॥352॥

हिंसाइ-असुहकम्मं, तिव्व-कोहाइ-कसाओ णिंदा दु।
सच्चजुदाणं मच्छर - वंचणाइ - असुह - परिणामा॥353॥

आसव - हेदू वीरिय-अंतरायकम्मस्स मुणेदव्वा।
णाणिजणेहिं णिच्चं, परिहरिदव्वा तियजोगेहि॥354॥

दूसरों की शक्ति का घात करना, अपनी शक्ति का दुरुपयोग, अनंगक्रीड़ा, कुभोगोपभोगों में आसक्ति भाव, हिंसा आदि अशुभ कर्म, क्रोधादि तीव्र कषाय, सत्य से युक्त जनों की निंदा, मात्सर्य (ईर्ष्या), छल-कपट आदि अशुभ परिणाम आदि ये वीर्यान्तराय कर्म के आस्रव के कारण जानने चाहिए। ज्ञानीजनों के द्वारा ये नित्य ही तीनों योगों से छोड़े जाने चाहिए।

साता वेदनीय कर्मास्रव कारण

अरिहपूया दु वेज्जावच्चं पाणीसु दयाधारणं च।
कसायमंद - कुव्वणं, खमादिजुद - समत्तभावो दु॥355॥

मेत्ती - आइ - भावणा, सम्मत्ताणुवट्टि -सुकज्जाइं च।
सादावेयणीयस्स, आसवहेदू मुणेदव्वा॥356॥

अरिहंत पूजा, साधुओं की वैय्यावृत्ति, सभी प्राणियों में दया धारण करना, कषायों को मंद करना, क्षमादि से युक्त समत्व भाव, मैत्री आदि भावना, सम्यक्त्व के अनुवर्ती शुभ कार्य ये सातावेदनीय कर्म के आस्रव के हेतु जानने चाहिए।

असातावेदनीय कर्मास्रव कारण

पराण दुह-किलेसट्ट - उप्पाढणं भुंजणं रत्तीए।
अइकसाओ तासणं, धम्म - धंसणं विसेसेणं॥357॥

सोगपरिदावपीडाणुभवण-मुवहसणं परिदेवणं च।
सगवराण दूहवणं, णिंदणीय-चिंतणं तहा हु॥358॥

हिंसाइ-उवयरणाण, दाणं किदकारिदाणुमोदणं च।
पावकज्जाणं पणोल्लणं चिय पावुवएसणं च॥359॥

अभक्ख-भक्खणं च, पूयाइ-सुकज्जेसु विग्घकरणं॥
अवमण्णणं खंडणं, धम्मायदणाणं जाणेज्ज॥360॥

सवरहिदत्थ - मसादावेयणीय - कम्मस्सासव - हेदू।
जदि कंखदि कल्लाणं, णेव करेज्ज उत्त-कज्जाणि॥361॥

दूसरों के लिए दुःख, क्लेश, आर्त्त उत्पन्न करना, रात्रि में भोजन करना, अति कषाय, त्रास देना, धर्म का विध्वंस करना, शोक, परिताप, पीड़ा का अनुभव करना, उपहास करना, परिवेदना, स्व-पर के लिए दुःख देना, निंदनीय चिंतन करना, हिंसादि उपकरणों का दान देना, पाप कार्यों को करना, कराना या अनुमोदना करना, पाप कार्यों की प्रेरणा देना, पापोपदेश देना, अभक्ष्य भक्षण करना, पूजादि शुभ कार्यों में विघ्न करना, धर्मायतनों का अपमान या अविनय करना, उन्हें खंडित करना आदि असातावेदनीय कर्मास्रव के हेतु जानने चाहिए। हे भव्य! यदि अपना कल्याण चाहते हो तो उक्त कार्य ना करें।

उच्चगोत्र कर्मास्रव कारण

अप्पणिंदा य परगुण-पसंसा सुधम्मी पडि सम्माणं।
णेह-भावो परमट्ठभूददेव-सुद-गुरुणो पडि य॥362॥

धम्माराहणा पंचगुरु-भत्ती सयायार-पालणं च।
जिणसमये णादव्वा, उच्चगोदस्सासव-हेदू॥363॥

आत्म निंदा, पर गुण प्रशंसा, सुधर्मियों के प्रति सम्मान, परमार्थभूत देव-शास्त्र-गुरुओं के प्रति स्नेह भाव, धर्माराधना, पंच गुरुओं (परमेष्ठियों) के प्रति भक्ति, सदाचार का पालन, जिनागम में ये उच्च गोत्र के आस्रव के हेतु जानने चाहिए।

नीच गोत्र कर्मास्रव कारण

परगुण - सगदोसाणं, छादण - मप्पपसंसा परणिंदा।
सगुणाण - उग्घाडणं, परदोसाणं विसेसेणं।।364।।

माणीयाणं अवमण्णणं माणणं तह विवरीयाणं।
सुधम्मस्स अविणयो च, कुधम्मेसु विणयभावो तह।।365।।

रुद्दट्टझाणहेदू, अच्चायार - कुव्वणं दूहणं च।
दाणं दिच्चा सुभत्ति - विणयाइ - करणं विधम्मीण।।366।।

कयायार - पणोल्लणं, पावकज्जेसुं सया रुइ - भावो।
सहावे अरुइ - भावो, धम्मं पडि उवेक्खा - भावो।।367।।

एवंविह - इच्चादी, णीयगोदस्सासव - हेदू जाण।
सद्दिट्ठी णो करेज्ज, कया वि इमाणि चिय सिविणे वि।।368।।

परगुण व स्वदोषों का आच्छादन, आत्मप्रशंसा, परनिंदा, स्वगुणों को और विशेष रूप से परदोषों को प्रकाशित करना, सम्मानीय जनों का अपमान करना, विपरीत अर्थात् असम्मानीय जनों का सम्मान करना, समीचीन धर्म की अविनय, मिथ्याधर्मों में विनय भाव, धर्मियों के रौद्र व आर्त्त ध्यान को निमित्त होना, अत्याचार करना, दुःख देना, दान देकर विधर्मियों की भक्ति, विनयादि करना, कदाचार की प्रेरणा देना, पाप कार्यों में रुचि भाव, स्वभाव में अरुचि भाव, धर्म के प्रति उपेक्षा का भाव आदि इस प्रकार नीच गोत्र के आस्रव के कारण जानने चाहिए। सम्यग्दृष्टियों को ये कार्य स्वप्न में भी कभी नहीं करने चाहिए।

नरकायु बंध कारण

चंडो ण मुअदि वइरं, किलेसयरो बहुदेससंजुत्तो।
तिव्वकामासत्तो य, मुच्छिदो मूढोव्व संगम्मि॥369॥

तिव्वमायायार - परिणामजुदो विवेगहीणो माणी।
लोहग्गिम्मि डज्झदे, जो सो बंधेदि णिरयाउं॥370॥

जो चंड (अति तीव्र क्रोधी) है, बैर नहीं छोड़ता, क्लेश करने वाला, बहुत द्वेष से युक्त, तीव्र कामासक्त, परिग्रह में मूढ़ के समान मूर्च्छित (तीव्रासक्त), तीव्र मायाचार के परिणाम से युक्त, विवेकहीन, मानी है, लोभ की अग्नि में जलता रहता है वह नरकायु का बंध करता है।

बहु-आरंभे लीणो, हिंसगजंतुव्व कूरत्त-जुत्तो।
रत्तो रुद्दझाणम्मि, तहा परवधबंधणम्मि जो॥371॥

इंदियभोगेसु रमदि, कुभावेहिं परित्थि-पुरिसेसु सो
बंधेदि दु णिरयाउं, वासणासंजुदो संढोव्व॥372॥

जो बहुत आरंभ में लीन, हिंसक जंतु के समान क्रूरता से युक्त, रौद्र ध्यान तथा पर वध बंधन में भी अनुरक्त है। जो कुभावों से इंद्रिय भोग, परस्त्री या परपुरुष में रमण करता है, नपुंसक के समान वासना से युक्त रहता है, वह नरक आयु का बंध करता है।

मंसमज्जमहुसेवण - माखेड - चोरिआ य जूअकेली।
परित्थिवेस्सागमणं, आदी हेदू णिरयाउस्स॥373॥

माँस, मद्य, मधु सेवन, शिकार करना, चोरी करना, जूआ खेलनाा, परस्त्री गमन, वेश्यागमन आदि नरकायु के आस्रव के कारण हैं।

तिर्यंचायु बंध कारण

कुडिलसहावी मायायारी मिच्छत्ततिव्वभावजुदो।
पंचिंदिय-विसया जो, जीवो छलेण सेवदि सया॥374॥

कंखदे सगपसंसं, परणिंदं करेदि आणंदेणं।
कडुअ अजसकज्जाइं, आउरो तह सगकित्तीए।।375।।

दंसावदे सयं जो, सेट्ठो सुद्धो सुधम्मसंजुत्तो।
णवरि हवेदि असुद्धो, णिक्किट्ठ-जहण्ण-पावजुदो।।376।।

बंधेदि णियमेण सो, तिरियाउं चिय णेव संकणेज्जा।
भव्वा उज्झेज्ज ताणि, कज्जाणि सगप्प-रक्खत्थं।।377।।

जो कुटिल स्वभावी, मायाचारी, मिथ्यात्व के तीव्र भाव से युक्त है, पंचेन्द्रिय के विषयों का सदा छल से सेवन करता है, अपनी प्रशंसा चाहता है, आनंद से दूसरों की निंदा करता है, अपकीर्ति के कार्य करके कीर्ति के लिए आतुर है, जो स्वयं को श्रेष्ठ, शुद्ध व धर्म युक्त दिखाता है किन्तु विशेषता यह है कि वह अशुद्ध, निकृष्ट, जघन्य पाप से युक्त होता है वह नियम से तिर्यंचायु का बंध करता है इसमें शंका नहीं करनी चाहिए। भव्यों को वे सभी कार्य स्वात्मा की रक्षा के लिए छोड़ देने चाहिए।

मिच्छाधम्मुवएसो, णिस्सीलत्त-मुम्मग्गदेसणं च।
भेदकरणं जाइ-कुल-सील-संदूसणं वंचणा।।378।।

असुहलेस्स-परिणामो, बहुसंगारंभो च विसंवादो।
रुद्दट्टज्झाणं कम्मभूमिज-तिरियाउ-हेदू हु।।379।।

मिथ्याधर्मोपदेश, नि:शीलतव, उन्मार्ग की देशना देना, भेद करना, जाति-कुल-शीलादि को दूषित करना, वंचना (छल), अशुभ लेश्या के परिणाम, बहुत परिग्रह व आरंभ, विसंवाद, आर्त्तध्यान तथा रौद्र, ध्यान ये कर्मभूमिज तिर्यंच आयुकर्म के आस्रव के हेतु हैं।

मंदकसायी मिच्छाइट्ठी दाणेण अणुमोयणेणं।
मुणिव्वदं अघ धारिय, उज्झदि-संजमं सम्मत्तं।।380।।

छलेण णस्सदि चरियं, धारेदि वा कुलिंगीणं भेसं।
जो सो मरित्ता होदि, तिरियो खलु भोयभूमीए।।381।।

जो मंद कषायी, मिथ्यादृष्टि, दान व उसकी अनुमोदना से मुनिव्रत को धारण कर पुनः संयम वा सम्यक्त्व का त्याग करता है। छल से चारित्र नष्ट करता है अथवा कुलिंगियों का भेष धारण करता है वह मृत्यु को प्राप्त कर भोगभूमि में तिर्यंच होता है।

कुभोगभूमिज मनुष्यायु बंध कारण

कुपत्ताण देदि दाण - मसुद्धवत्थाए दुब्भावेणं।
छलेण परोवयारं, कुणदि कुभोगभूमिजो होदि।।382।।

जो कुपात्रों को दान देता है, अशुद्ध अवस्था में या दुर्भावों से दान देता है, छल से परोपकार करता है वह कुभोगभूमिज होता है।

कर्मभूमिज मनुष्यायु बंध कारण

अप्पारंभय - ससंग - सयायारि - मंदकसायजुत्तो य।
भद्दो चोक्खो सरलो, मद्दवभावसहिदो जो सो।।383।।

अप्पसंकिलेसजुदो, इच्चाइ-सुहपरिणामसंजुत्तो।
सुहज्झाण-रदो तहा, होदि णरो कम्मभूमीए।।384।।

जो अल्पारंभी, परिग्रही, सदाचारी, मंदकषायी, भद्र, चोखा, सरल, मार्दव भाव से युक्त, अल्प संक्लेश युक्त, शुभ ध्यान में रत इत्यादि शुभ परिणामों से युक्त है वह कर्मभूमि में मनुष्य होता है।

भोगभूमिज मनुष्यायु बंध कारण

सुहलेस्सा - संजुत्तो, पूयासुदाणधम्मदयाजुत्ता।
कुसलो गुरुसेवाए, वेज्जावच्चे सुहकिरियासु।।385।।

देदि उत्तमपत्ताण, जो सो विसेसेणं दु आहारं।
होदि भोयमहिज-णरो, किदकारिदणुमोयणेणं च।।386।।

जो शुभ लेश्या से युक्त, पूजा-दान-धर्म-दया से संयुक्त, गुरुसेवा में कुशल, वैय्यावृत्ति व शुभ क्रियाओं में कुशल है, उत्तम पात्रों को विशेष रूप से आहार देता है वह आहार दान की कृत-कारित-अनुमोदना से भोगभूमिया मनुष्य होता है।

जो को वि णरो पुव्वे, बंधित्तु णराउं वा तिरियाउं।
पच्छा पावेदि खयिय-सम्मत्तं जणदि भोए सो।।387।।

जो कोई भी मनुष्य पूर्व में मनुष्यायु या तिर्यंचायु का बंध करके पश्चात् क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त करता है वह भोगभूमि में उत्पन्न होता है।

देवायु बंध कारण

सरागसंजमी देस - संजमी अकाम - णिज्जरा - जुत्तो।
बाल - तवस्सी सुहलेस्सा - मंदकसायेहि सहिदो।।388।।

पुव्वे आउ-बंधगो, णो जदि णर-तिरिय-सम्माइट्ठी दु।
तो देवाउं बंधदि, भवणत्तियम्मि जणदे णेव।।389।।

सरागसंयमी, देशसंयमी, अकामनिर्जरा से युक्त, बाल तपस्वी, शुभ लेश्या व मंद कषायों से सहित यदि कोई सम्यग्दृष्टि मनुष्य वा तिर्यंच पूर्व में आयु का बंधक नहीं है तो वह देवायु का बंध करता है उसमें भी वह भवनत्रिक में जन्म नहीं लेता।

खयिय-सम्माइट्ठी दु, जदि पुव्वम्मि आउ-बंधगा णेव।
जणंति सव्वा सुरेसु, तुरियादो दु उवसंततं।।390।।

क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव यदि पूर्व में आयु के बंधक नहीं हैं तो चतुर्थ से उपशांत गुणस्थान तक सभी जीव वैमानिक देवों में उत्पन्न होते हैं।

उक्किट्ठ-सुक्कलेस्सा-जुदो चढंतो उवसमसेणीए।
आउक्खयम्मि जम्मदि, अणुदिसणुत्तरविमाणेसुं।।391।।

उत्कृष्ट शुक्ल लेश्या से युक्त उपशम श्रेणी पर चढ़ता हुआ जीव आयु के क्षय होने पर अनुदिश व अनुत्तर विमानों में जन्म लेता है।

मज्झ-तेज-लेस्सा-जुद-मुणी उवसमसेणि-मवरोहिय जदि।
मरदि तो उप्पज्जेदि, सोहम्मीसाण - सग्गेसुं॥392॥

उक्किट्ठ - तेज - लेस्सा - जुदो वा जहण्णपउमलेस्साए।
जदि मरदि तो जम्मदे, सणदमाहिंदसग्गेसुं च॥393॥

मज्झ - पउम - लेस्साए, जुदो - बंभलंतव - सुक्ककप्पेसु।
सदारसहस्सारेसु, वरपउमजहण्णसुक्केहिं॥394॥

उपशम श्रेणी से उतरकर मुनि यदि मध्यम पीत लेश्या युक्त परिणामों से मृत्यु को प्राप्त करता है तो वह सौधर्म-ऐशान स्वर्गों में उत्पन्न होता है। यदि वह मुनि उत्कृष्ट पीत लेश्या या जघन्य पद्म लेश्या युत परिणामों से मरण करता है तो वह सनत् वा माहेंद्र स्वर्ग में उत्पन्न होता है। यदि वह मुनि मध्यम पद्म लेश्या युत परिणामों से मृत्यु को प्राप्त करता है तो ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर, लांतव-कापिष्ठ व शुक्र-महाशुक्र कल्पों में जन्म लेता है। और यदि वह मुनि उत्कृष्ट पद्म लेश्या या जघन्य शुक्ल लेश्या युत परिणामों से मृत्यु को प्राप्त करता है तो शतार वा सहस्रार स्वर्ग में उत्पन्न होता है।

आउक्खयम्मि आणद - पाणदारणच्चुदमेवेज्जेसुं।
मज्झ-सुक्कलेस्सा-जुद-चढंतो उवसमं जम्मेदि॥395॥

उपशम श्रेणी पर चढ़ते हुए मध्यम शुक्ल लेश्या परिणामों से युक्त मुनिवर आयु के क्षय होने पर आनत-प्राणत-आरण-अच्युत स्वर्ग वा नव ग्रैवेयकों में उत्पन्न होते हैं।

भवनात्रिक बंध कारण

मिच्छत्तजुद-तव-चाग-वेरग्गज्झाणेहि जुदा मणुआ।
मंदकसायी बहुगा, उप्पज्जंति भवणत्तियेसु।।396।।

मिथ्यात्व युक्त तप, त्याग, वैराग्य, ध्यान से युक्त मंदकषायी बहुत मनुष्य भवनत्रिकों में उत्पन्न होते हैं।

किव्विसि - कंदप्पि - संबोहि - आसुरि - गंधव्वभावणाहिं।
जुत्तो जोदिस - वेज्जग - रंजायमाणो सय साहू।।397।।

संजमादो चुदो वा, तिव्वदोसजुदं पालदि चरित्तं।
कोहाइ-कसाय-जुदो, सम्मत्तविराहगो जो सो।।398।।

विसयारंभ - परिग्गह - आसत्तो कामवासणारदो य।
कुव्वदि कायकिलेसं, जादि कुदेवेसु अण्णाणी।।399।।

किल्विषी, कंदर्पी, संबोधि, आसुरी, गंधर्व भावना से युक्त ज्योतिष-वैद्यक में रंजायमान, संयम से च्युत वा जो साधु तीव्र दोषों से युक्त चारित्र का पालन करता है, क्रोधादि कषायों से युक्त, सम्यक्त्व-विराधक, विषय-आरंभ-परिग्रह में आसक्त, काम-वासना में रत कायक्लेश करता है वह अज्ञानी कुदेवों में उत्पन्न होता है।

शुभाशुभ बंध कारण

सुहणामस्स दु बंधो, होदि तिजोगाण सुहपविट्टीए।
असुहपविट्टीइ ताणमेव य असुहणामकम्मस्स।।400।।

तीनों योगों की शुभ प्रवृत्ति से शुभ नामकर्म का बंध होता है तथा उनकी ही अशुभ प्रवृत्ति से अशुभ नाम कर्म का बंध होता है।

अशुभ नामकर्म बंध कारण

जावइय - सुह - कम्माणि, बंधकारणं सुहणामकम्मस्स।
सव्व - असुहकज्जाइं असुहणामस्स तिजोगेहिं।।401।।

तीनों योगों से जितने शुभ कर्म हैं वे शुभ नाम कर्म के बंध के कारण हैं उतने सभी अशुभ कार्य अशुभ नामकर्म के बंध के कारण हैं।

मंदवुड्डिसिस्साणं, अणुग्गहस्स भणामि वित्थरेणं।
असुहादो रक्खेदुं, सगं सक्केज्ज भवी जम्हा।।402।।

मंदबुद्धि शिष्यों के अनुग्रह के लिए मैं (आचार्य वसुनंदी) इन्हें विस्तार से कहता हूँ। जिससे भव्यजन स्वयं की अशुभ से रक्षा करने में समर्थ हो सकें।

विविध गति बंध कारण

णिरयगदीइ कारणं, विआणेज्जा णिरयाउकारणं व।
सेस-गदीणं तहेव, ताणं चिय आउकारणं व।।403।।

नरक गति के बंध का कारण भी नरकायु के बंध के कारण के समान जानना चाहिए। उसी प्रकार शेष गतियों के बंध का कारण भी उनकी आयु के कारण के समान जानना चाहिए।

जाति बंध कारण

तिजोगेहिं किदं सुह-कज्जं पणिंदियजादिकारणं च।
असुहं एगिंदियाइ - जहाजोग्गकारणं मण्णे।।404।।

तीनों योगों से किए गए शुभ कार्य पंचेन्द्रिय जाति के बंध का कारण हैं एवं अशुभ कार्य यथायोग्य एकेन्द्रिय आदि जाति के बंध का कारण मानना चाहिए।

शरीर बंध कारण

ओरालिय-वेउव्विय-देहा जदि होंति चिय सुहारूवा।
सुहकम्म-फलं णियमा, विवरीया असुह-फलं जाण।।405।।

औदारिक व वैक्रियक शरीर यदि शुभ रूप होते हैं तो वह नियम से शुभ कर्म का फल जानो और यदि विपरीत अर्थात् अशुभ रूप होते हैं तो अशुभ कर्म का फल जानो।

आहारकादि देह बंध कारण

आहारग-देहो चिय, सुहरूवो चिय हवेदि णियमेणं।
तेजस-कम्माण-तणू, सुहासुहउहयरूवा तहा।।406।।

आहारक शरीर नित्य शुभ रूप ही होता है। तैजस तथा कार्माण शरीर शुभ व अशुभ उभय रूप होता है।

विसेस-संजम-तवाण, अविणाभावी रूव-परिणामा दु।
आहार - देह - बंधण - कारणं णिद्दिट्ठं समये।।407।।

विशेष संयम व तप के अविनाभावी रूप परिणाम आहारक शरीर बंधन के कारण निर्दिष्ट किए गए हैं।

बंधन-संघात-अंगोपांग बंध हेतु

देहबंधणसंघाद - अंगोवंगाण बंधो देहोव्व।
असुहेणं असुहस्स य, रक्खेज्जा असुहादो सगं।।408।।

देह बंधन, देह संघात व अंगोपांग का बंध शरीर के समान जानना चाहिए। अशुभ कर्म से अशुभ देहादि का बंध होता है। अतः अशुभ से स्वयं की रक्षा करनी चाहिए।

संस्थान बंध कारण

समचउक्क-संठाणं, लहदि जीवो जिणपूया-भत्तीइ।
वेज्जावच्चेण तित्थ-वंदणाए धम्मकिरियाहि।।409।।

जीव जिनपूजा, भक्ति, वैय्यावृत्ति, तीर्थवंदना आदि धर्म क्रियाओं से समचतुरस्र संस्थान प्राप्त करता है।

सेस - पंचसंठाणं, पावदि जीवो असुहपविट्टीए।
देहस्स कुचेट्ठाए, हिंसा णिद्दयववहारेण।।410।।

अशुभ प्रवृत्ति, देह की कुचेष्टा, हिंसा व निर्दय व्यवहार से जीव शेष पाँच संस्थान प्राप्त करता है।

संहनन बंध कारण

वेउव्विय - देह - रहिद - सव्वतसाणं हवेदि संघडणं।
ओरालिय-तणु विणा, अण्ण-देहीण ण संघडणं॥411॥

वैक्रियक शरीर से रहित सभी त्रसों के संहनन होता है। औदारिक शरीर के अतिरिक्त अन्य शरीरधारियों के संहनन नहीं होता।

वज्रवृषभनाराच बंध कारण

कुलाइ-दहसमणाणं, वेज्जावच्चं कुणेदि भत्तिं जो।
जीव-रक्खणं जिणपूयं पढमुत्तमं बंधदि सो॥412॥

जो कुल आदि दस प्रकार के श्रमणों की वैय्यावृत्ति करता है, भक्ति करता है, जीव रक्षण व जिन पूजन करता है वह प्रथम उत्तम वज्रवृषभनाराच संहनन का बंध करता है।

सरीरस्स सुहकिरिया, पुण्णरूवा सवर-सुहरूवा तह।
ओसहि - अभयदाणं वि, कारणं वज्जुसहबंधस्स॥413॥

देह की पुण्यरूप, स्वपर सुख रूप शुभ क्रिया एवं औषधि व अभयदान भी वज्रवृषभनाराच संहनन के बंध के कारण हैं।

सम्माइट्ठी देवा, णेरइया सव्वा चिय णियमेणं।
वज्जउसहणारायं, बंधंति जिणभत्ति - पहुदीहि॥414॥

सभी सम्यग्दृष्टि देव व नारकी जिनभक्ति आदि के द्वारा नियम से वज्रवृषभनाराच संहनन का बंध करते हैं।

वज्रनाराच संहनन बंध कारण

सामण्णसुहकज्जेहि, बंधदि वज्जणाराय-णारायं।
असुहकम्मं च विहाय, णेव होदि अण्णहा कया वि॥415॥

अशुभ कर्मों को छोड़कर जीव सामान्य शुभ कार्यों से वज्रनाराच या नाराच संहनन का बंध करता है। यह कदापि भी अन्यथा नहीं होता।

अन्य संहनन बंध हेतु

अद्धणाराय - कीलय - असंपत्तसंघडणं च बंधेदि।
कमेण असुह-असुहतर-असुहतम-कज्जकरणादो दु।।416।।

आरब्भ - ति - संहणाण - धारगो चिय सक्केदि भव्वुल्लो।
उक्किट्ठ - संजमजुदो, आरूढिदुं उवसमसेणिं।।417।।

प्रारंभ के तीन संहननों को धारण करने वाला उत्कृष्ट संयम से युक्त भव्य जीव उपशम श्रेणी पर चढ़ने में समर्थ होता है। अशुभ, अशुभतर व अशुभतम कार्य-कारण से क्रमशः अर्द्धनाराच, कीलक व असंप्राप्तासृपाटिका संहनन का जीव बंध करता है।

वज्रवृषभनाराच बंधक

सम्माइट्ठी णेव दु, बंधेदि अंतिम - पंच - संघडणं।
सो बंधदि णियमेणं, पढम - वज्जरिसहणारायं।।418।।

सम्यग्दृष्टि जीव कभी भी अंतिम पाँच संहननों का बंध नहीं करता। वह नियम से प्रथम वज्रवृषभनाराच संहनन का बंध करता है।

अशुभ स्पर्शादि बंध हेतु

फास-रसण-घाण-चक्खु-कण्णक्ख-विसयाण दुरुवओगो य।
तहेव इंदियाणं वि, हेदू असुहफासादीणं।।419।।

स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु व कर्ण इंद्रिय विषयों का एवं इंद्रियों का दुरुपयोग अशुभ स्पर्श, रस, गंध, वर्ण के आस्रव का हेतु होता है।

शुभ स्पर्शादि बंध हेतु

उत्त-पंचिंदियाणं, तहेव ताणं विसयाणं अवि जो।
कुणदि सदुवओगो सो, बंधेदि चिय सुहफासादिं।।420।।

जो उक्त पंचेन्द्रियों का एवं उसी प्रकार उनके विषयों का भी सदुपयोग करता है वह शुभ स्पर्शादि का बंध करता है।

आनुपूर्वी बंध हेतु

णारय-तिरिय-णर-देव-आणुपुव्वि-बंधकारणं णेयं।
ताण आउ-गदीणं च, बंधकारणं व णाणीहिं।।421।।

ज्ञानीजनों को नरकगत्यानुपूर्वी, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मनुष्यगत्यानुपूर्वी एवं देवगत्यानुपूर्वी के बंध का कारण उनकी आयु व गतियों के समान ही जानना चाहिए।

उपघात-परघात बंध कारण

देदि संकिलिट्ठेहिं, सगदेहस्स कट्ठं किलेसं जो।
उवघादं बंधदि सो, विवरीयत्तादु परघादं।।422।।

जो अपनी देह को संक्लेशतापूर्वक कष्ट व क्लेश देता है वह उपघात नामकर्म का बंध करता है एवं इसके विपरीत करने से अर्थात् दूसरे की देह को कष्ट व क्लेश देने से परघात नामकर्म का बंध करता है।

अगुरुलघु नामकर्म बंध कारण

बंधदि अगुरुलहुं सो, थूलदेहं ण णिंददि णो सुहुमं।
देहसहावं जाणिय, धारेदि जो सहजभावं च।।423।।

जो न तो स्थूल देह की निंदा करता है, ना सूक्ष्म देह की निंदा करता है, देह के स्वभाव को जानकर सहजभाव धारण करता है वह अगुरुलघु नामकर्म का बंध करता है।

आतप बंध कारण

परदेहं पाव-ताव-हेदू सीयलत्तस्स सगदेहं।
जो मण्णदि सो बंधदि, आदव-णामकम्मं णियमा।।424।।

जो दूसरों की देह को पाप व ताप का कारण मानता है और अपनी देह को शीतलता का हेतु मानता है वह नियम से आतप नाम कर्म का बंध करता है।

उद्योत बंध कारण

सगवरदेहं मण्णदि, सीयलरूवो जो सुहकारणं च।
सो बंधदे उज्जोद - कम्मं सीयलकंतिरूवं।।425।।

जो स्वपर देह को शीतलरूप व सुख का कारण मानता है वह शीतल कांति रूप उद्योत नामकर्म का बंध करता है।

श्वासोच्छ्वास बंध कारण

जीवा बंधंति आणपाणसुहकम्मं सुहपरिणामेहि।
सव्वाणं आणपाण - रक्खाए दयाए णियमा।।426।।

दयापूर्वक सभी के श्वासोच्छ्वास की रक्षा के शुभ परिणामों से जीव नियम से शुभ श्वासोच्छ्वास नामकर्म का बंध करते हैं।

प्रशस्त विहायोगति बंध कारण

कस्स वि गइ-पविट्टिं च, पस्सिदूण पसंसदि सुभावेहिं।
सगं ण णिंददि जो सो, बंधेदि सुहविहाओगदिं।।427।।

जो किसी की भी चाल व प्रवृत्ति देखकर उसकी शुभ भावों से प्रशंसा करता है, अपनी निंदा नहीं करता, वह शुभ विहायोगति का बंध करता है।

पसत्थगदीए बंध-हेदू तित्थयराइ-महाणरेहि।
सह गमणं सुकज्जाणि, तित्थवंदणपूयादी तह।।428।।

तीर्थंकर आदि महापुरुष के साथ गमन करना, तीर्थयात्रा, वंदन, पूजा आदि शुभ कार्य प्रशस्त विहायोगति के बंध के कारण हैं।

अप्रशस्त विहायोगति बंध कारण

परजीव-पोग्गलाणं, णिंदेदि जोइसिय-विमाणगदिं च।
सगगदिं वि उवहसदे, गच्छेज्जा असुहकज्जाणं।।429।।

तित्थाइ-पुण्ण-कज्जं, णिंदेदि जो बंधेदि सो जीवो।
पावपइडि - मप्पसत्थ - विहायोगदि - णामकम्मं दु।।430।।

जो पर जीव व पुद्गल की गति की निंदा करता है, ज्योतिष विमानों की गति की निंदा करता है, अपनी चाल का उपहास करता है, अशुभ कार्यों के लिए जाता है, तीर्थादि पुण्य कार्यों की निंदा करता है वह जीव पाप प्रकृति अप्रशस्त विहायोगति नामकर्म का बंध करता है।

प्रत्येक शरीर बंध कारण

सातंतं जो कंखदि, णो कुव्वदि पर-आहीणं तहेव।
सव्व-जीवाण सत्ता, पुध पुध मण्णेदि तियालम्मि।।431।।

सगप्पं अणुभवेदि य, पत्तेय - सरीरणामकम्मं सो।
बंधदि जीवो णियमा, तं पुण्णपइडिं सुभावेहि।।432।।

जो स्वतंत्रता चाहता है, दूसरों को अपने आधीन नहीं करता, तीनों काल में सभी जीवों की सत्ता पृथक्-पृथक् मानता है, निज आत्मा का अनुभव करता है वह जीव शुभ भावों से नियम से उस प्रत्येक शरीर नामकर्म रूप पुण्य प्रकृति का बंध करता है।

साधारण नामकर्म बंध कारण

अणेगजीवेहिं सह, जम्म-मरण-माहार-मुस्सासं च।
कंखदि जो सो वसिदुं, अणंतेहि सह एगदेहे।।433।।

मण्णदि अणंतजीवा, इगरूवा साहारणं बंधेदि।
अच्चंतपावपइडिं, बंधगा स हिदत्थ-मसक्का।।434।।

जो अनेक जीवों के साथ जन्म, मरण, आहार व उच्छ्वास की आकांक्षा करता है, अनंत जीवों के साथ एक देह में निवास की आकांक्षा करता है। अनंत जीवों को एकरूप मानता है वह अत्यंत पाप प्रकृति साधारण नामकर्म का बंध करता है। इस प्रकृति का बंधक स्वहित करने में असमर्थ होता है।

स्थावर नामकर्म बंध कारण

जीवो जो को वि हंदि, रसणादीण कुणेदि दुरुवओगं।
अण्णक्खा वि घाददे, लहदि सो थावर-पज्जायं॥435॥

जो कोई भी जीव रसनेन्द्रिय आदि का दुरुपयोग करता है, अन्य इंद्रियों का भी घात करता है वह स्थावर पर्याय को प्राप्त करता है।

पृथ्वीकायिक नामकर्म बंध कारण

सुहकज्जाण विरोही, सयं णो इच्छेदि धम्मकज्जाणि।
जो सो उप्पज्जेदि हु, पुढविकाइयेसु पाविट्ठो॥436॥

जो शुभ कार्यों का विरोधी है, स्वयं धर्म कार्यों की इच्छा नहीं करता वह पापिष्ठ जीव पृथ्वीकायिकों में उत्पन्न होता है।

जलकायिक नामकर्म बंध कारण

माइल्लो ससल्लो सुमग्ग णासग-सढसील-अलसो य।
परधणित्थि-आकंखी, उप्पज्जदि जलकाइयेसु॥437॥

जो तीव्र मायावी, माया-मिथ्या-निदान इन तीन शल्यों से सहित, समीचीन मार्ग का नाशक, मन में कपट रखकर मीठा बोलने वाला, आलसी एवं पर धन और स्त्री का आकांक्षी जलकायिकों में उत्पन्न होता है।

अग्निकायिक नामकर्म बंध कारण

परदेहं संतावदि, उप्पज्जेदि य अग्गिकाइयेसुं।
जीवाण देदि तावं, जो सो परदुक्खकारणं च॥438॥

जो दूसरों की देह को संतापित करता है, जीवों को संताप देता है और पर दुःख का कारण है वह अग्निकायिकों में उत्पन्न होता है।

रदो पावकम्मेसुं, सव्वक्खयिदुं भुंजिदुं कंखेदि।
धम्म-धम्मि-दाहगो च, उप्पज्जदि तेउकाइयेसु॥439॥

जो पापकर्मों में रत, धर्म व धर्मी का दाहक, सबका क्षय करने एवं सबका भोग करने की आकांक्षा करता है वह अग्निकायिकों में उत्पन्न होता है।

वायुकायिक नामकर्म बंध कारण

जो चंचल-चित्तो चिय, चंचलत्तं कंखेदि अइपावीं।
धम्म-धंसगो दु वाउ-काइयेसु उप्पज्जेदि सो॥440॥

जो चंचल चित्त, धर्म ध्वंसक, अतिपापी जीव चंचलता की आकांक्षा करता है वह वायुकायिकों में उत्पन्न होता है।

सव्वपलयं कंखदे, मूलादो घादं कडुअ णंदेदि।
पराणं दुहं दिच्चा, जम्मेदि वाउकाइयेसुं॥441॥

जो सर्व ओर प्रलय की आकांक्षा करता है, मूल से घात करके दूसरों को दु:ख देकर आनंदित होता है वह वायुकायिकों में जन्म लेता है।

वनस्पतिकायिक नामकर्म बंध कारण

पर-जीवा-बंधित्ता, घाददि पेल्लदि णासेदि जो को वि।
अग्गिम्मि आलुंखदे, सीदठाणम्मि खिवेदि खलु जो सो॥442॥

बंधित्तु सव्वजीवा, हणेदि णिद्दयभावेहिं णिच्चं।
वणप्फदिणामकम्मं, बंधदि अइदुट्ठभावेहिं॥443॥

जो कोई भी परजीवों को बांधकर उनका घात करता है, उन्हें पेलता है, नष्ट करता है, अग्नि में जलाता है, शीत स्थान पर फेंक देता है, सबको बांधकर निर्दय भावों से मारता है वह अति दुष्टभावों से वनस्पति नामकर्म का बंध करता है।

त्रस नामकर्म बंध कारण

दुअक्खादो पणंतं, जस्स होज्ज तस्स तसणामकम्मं।
दुप्पओगं अक्खस्स, जस्स कुणदि तस्स ण होदि तं॥444॥

दो इंद्रिय से पाँच इंद्रियों तक जिसके होती हैं उसके त्रस नामकर्म का उदय जानना चाहिए। जीव जिस इंद्रिय का दुरुपयोग करता है उसके पुन: वह इंद्रिय नहीं होती।

सगहिदं जो कंखेदि, जीवा पडि दयाभावजुदो कुणदि।
ण मणस्स दुरुवओगं, सो सण्णी होदुं समत्थो।।445।।

जीवों के प्रति दया भाव से युक्त जो अपने हित की आकांक्षा करता है, मन का दुरुपयोग नहीं करता है वह संज्ञी होने में समर्थ होता है।

सुभग नामकर्म बंध कारण

जो सव्वेसुं पेम्मदि, णो णिंददि भत्ता जिण-साहूणं।
धम्मी पडि वच्छल्लं, धरेदि सो बंधेदि सुहगं।।446।।

जो सभी से प्रेम करता है, जिनेंद्र प्रभु व साधुओं के भक्तों की निंदा नहीं करता, धर्मियों के प्रति वात्सल्य भाव रखता है वह सुभग नामकर्म का बंध करता है।

दुर्भग नामकर्म बंध कारण

सवर-सरीरं पस्सिय, दुगुंछं कुव्वदि जो सयायाले।
जिण-मुणि-साधम्मिणो य, णिंददि परमेट्ठि-बिंबाइं।।447।।

सगदेहे णो णेहदि, जदवि सुंदरो वा इयरो तहेव।
देहेसु अण्णजणाण, बंधेदि सो दुब्भगकम्मं।।448।।

जो स्व-पर शरीर को देखकर सदा ग्लानि करता है, जिन मुनि, धर्मियों व परमेष्ठी के बिंबों की निंदा करता है, अपनी देह चाहे सुंदर हो या असुंदर किन्तु उससे स्नेह नहीं करता व अन्य जनों की देह में भी स्नेह नहीं रखता वह दुर्भग-नामकर्म का बंध करता है।

सुस्वर बंध कारण

सुहभावेहि कुणदि जिणथुदिं गुणुक्कित्तणं णिग्गंथाण।
पसंसदे सुकज्जाणि, भासेदि हिय-मिय-पिय-वयणं।।449।।

धम्मिट्ठा पडि णिच्चं, जोग्गवयणं हि वदेदि जो जीवो।
बंधेदि सो सुस्सरं, णामकम्मं च जिणुद्दिट्ठं।।450।।

जो शुभभावों से जिनेंद्र भगवान् की स्तुति करता है, निर्ग्रंथ गुरुओं का गुणोत्कीर्तन करता है, सुकार्यों की प्रशंसा करता है, हित-मित-प्रिय वचन बोलता है, धर्मियों के प्रति सदा योग्य वचन ही बोलता है, वह सुस्वर नामकर्म का बंध करता है ऐसा जिनेंद्र भगवान् के द्वारा कहा गया है।

दु:स्वर बंध कारण

जिणदेवं गुरुं च जिण-सत्थं जिणधम्मं णिंदेदि तहा।
कुडिलो य मच्छरभाव-जुदो वददि कक्कसं परुसं।।451।।

धम्मधंसगं अलीय-वयणं पेसुण्णं जो जीवो सो।
दुस्सरं णामकम्मं बंधदि तं कारणमुज्झेज्ज।।452।।

जो कुटिल व ईर्ष्या भाव से युक्त जीव निर्ग्रंथ गुरु, जिनागम वा जिनधर्म की निंदा करता है, कर्कश, परुष, धर्मध्वंसक, अलीक व पैशून्य वचन बोलता है वह दु:स्वर नामकर्म का बंध करता है अत: इन कारणों को छोड़ देना चाहिए।

सूक्ष्म नामकर्म बंध कारण

जो को वि जीवो अण्ण-जीवा सयायाले मुणदि तुच्छा।
सयं मण्णादि महाणो, सुहुमं बंधेदि माणेणं।।453।।

जो कोई भी जीव अन्य जीवों को सदा तुच्छ मानता है, स्वयं को महान् मानता है वह मान कषाय से सूक्ष्म नामकर्म का बंध करता है।

बादर नामकर्म बंध कारण

जीवो जो को वि दु सग-समो मण्णेदि पत्तेयं जीवं।
सहजभावेहि बंधदि, बादरणामकम्मं चिय सो।।454।।

जो कोई भी जीव प्रत्येक जीव को अपने समान मानता है वह सहज भावों से बादर नामकर्म का बंध करता है।

पर्याप्त नामकर्म बंध कारण

परदेहं णो खंडदि, धम्मं धम्मी रक्खदि सुभावेहि।
दयावरो दु बंधेदि, पज्जत्ति-णामं चिय जो सो।।455।।

जो पर देह का खंडन या हनन नहीं करता, शुभ भावों से धर्म व धर्मियों की रक्षा करता है, दयाभाव से युक्त वह जीव पर्याप्त नामकर्म का बंध करता है।

अपर्याप्त नामकर्म बंध कारण

खंडदि परदेहं जो, सगदेहं वि घाददि कुभावेहिं।
धम्मं धम्मी धंसदि, सो बंधदे अपज्जत्तं दु।।456।।

जो खोटे भावों से दूसरों की देह को खंडित करता है या अपने शरीर का भी घात करता है, धर्म व धर्मियों का विध्वंस करता है वह अपर्याप्त नामकर्म का बंध करता है।

स्थिर नामकर्म बंध कारण

जस्स चित्तं थिरं खलु, होदि धम्मम्मि य पुण्णकज्जेसुं।
णो मण-वयण-देहाण, असुहचेट्ठं तहा कुव्वेदि।।457।।

थिरं णामकम्मं सो, बंधेदि तं सुइरं तस्स देहो।
हवेदि णिरोगी तहा, सुहमोक्खमग्गकारणं अवि।।458।।

जिसका चित्त धर्म में पुण्य कार्यों में स्थिर होता है, मन-वचन व काय की अशुभ चेष्टाएँ नहीं करता वह स्थिर नामकर्म का बंध करता है। उसकी देह सुचिर काल तक निरोगी होती है तथा शुभ मोक्षमार्ग का कारण भी होती है।

अस्थिर नामकर्म बंध कारण

जस्स चित्तं दु कुडिलं, वयणं वंचगं कुचेट्ठा-जुत्तो।
देहो पीडदि अण्णा, घाददि तु बंधदि अथिरं सो।।459।।

जिसका चित्त कुटिल, वचन वंचक व शरीर कुचेष्टा से युक्त होता है, जो अन्यों को पीड़ा देता है वा घात करता है वह अस्थिर नाम कर्म का बंध करता है।

आदेय नामकर्म बंध कारण

णो णिंददि पर-देहा, ताण देहं पडि धरदि वच्छल्लं।
पुरिसित्थि-संढ-देहा, पस्सिय ण कामपीडिदो जो।।460।।

धम्महेदू सरीरं, मण्णदि सो दु बंधेदि आदेयं।
तम्हा पुण्णवंतेहि, करिदव्वाणि सुहकज्जाइं।।461।।

जो दूसरों के शरीर की निंदा नहीं करता, उनकी देह के प्रति वात्सल्य भाव रखता है, जो स्त्री-पुरुष वा नपुंसक की देह देखकर कामपीड़ित नहीं होता है तथा जो शरीर को धर्म का हेतु मानता है वह आदेय नामकर्म का बंध करता है अतः पुण्यवानों के द्वारा शुभ कार्य ही किए जाने चाहिए।

अनादेय नामकर्म बंध कारण

जो पस्सिय परदेहं, कुव्वदि कामभोयपरिणामं सो।
बंधदे अणादेयं, दूसिदो वियारभावेहिं।।462।।

जो दूसरे के शरीर को देखकर कामभोग रूप परिणाम करता है, विकार भावों से दूषित वह जीव अनादेय नामकर्म का बंध करता है।

यशःकीर्ति नामकर्म बंध कारण

जिणसुदमुणी थुवदि जो, गुणा जीवस्स तहा वक्खाणेदि।
सगदोसं पस्सदि सग-गुणा परदोसा य छादेदि।।463।।

परमेट्ठी वंदेदि य, कुव्वदि पहावणं जिणसासणस्स।
धम्मं रक्खेदि दु सो, बंधेदि जसकित्तिणामं च।।464।।

जो जिनेंद्र प्रभु, जिनागम व निर्ग्रंथ मुनियों की स्तुति करता है, जीव के गुणों का व्याख्यान करता है, अपने दोषों को देखता है तथा अपने गुण व पर के दोषों का आच्छादन करता है, जो परमेष्ठी की वंदना करता है, जिनशासन की प्रभावना करता है, धर्म की रक्षा करता है वह यश:कीर्ति नामकर्म का बंध करता है।

अयशःकीर्ति नामकर्म बंध कारण

रागेण दोसेण वा, तिव्वलोहेण जिम्हेण कुप्पेदि।
अकारणं जो छाददि, सदोसं परगुणा णिंदेदि।।465।।

परदोसं उग्घाडदि, णिंददि जिणधम्मं पावचित्तेण।
सो हंदि अजसकित्तिं, बंधदि लहदि बहुदुक्खाइं।।466।।

जो राग से, द्वेष से, तीव्र लोभ या माया से अकारण क्रोध करता है, दोषों को ढकता है, दूसरों के गुणों की निंदा करता है, दूसरे के दोषों का उद्घाटन करता है, पाप चित्त से जिनधर्म की निंदा करता है वह अयश:कीर्ति प्रकृति का बंध करता है एवं बहुत दु:खों को प्राप्त करता है।

तीर्थंकर प्रकृति का फल

वरा सव्वपइडीसुं, सुपुज्जपददायगा सदिंदेहिं।
होज्ज तित्थयरपइडी, तस्स बंधगो दु तिलोयगुरू।।467।।

हेदू गब्भजम्मतवकेवल - णाणमोक्ख - कल्लाणाणं।।
जिणसासण-णायगो य, जिणधम्मतित्थपवट्टगो दु।।468।।

शत इंद्रों के द्वारा पूज्य पद की दायक तीर्थंकर प्रकृति सर्व कर्म प्रकृतियों में उत्कृष्ट होती है। यह तीर्थंकर प्रकृति गर्भ, जन्म, तप, केवलज्ञान और मोक्ष कल्याणक का हेतु है। इस प्रकृति का बंधक तीन लोक का गुरु, जिनशासननायक व जिनधर्म तीर्थप्रवर्तक होता है।

तीर्थंकर प्रकृति बंध कारण

होदि सगकल्लाणेण, सह सव्वकल्लाणभावणा जस्स।
संकिलिट्ठतम-दयाइ, बंधदि तित्थयरपइडिं सो।।469।।

जिसकी भावना स्व-कल्याण के साथ सबके कल्याण की होती है वह संक्लेशतम दया से तीर्थंकर प्रकृति का बंध करता है।

दंसणविसोहि - आदी, सोलसकारणभावणा जाणेज्ज।
तित्थपइडिणिमित्तं दु, भणामि ता सगवरहिदत्थं।।470।।

दर्शनविशुद्धि आदि सोलह कारण भावना तीर्थंकर प्रकृति का निमित्त जाननी चाहिए। उन्हें यहाँ स्व-पर हित के लिए कहता हूँ।

दंसणविसोही विणय-संपण्णदा णिरदियार-सीलं च।
अभिक्खण - णाणुवजोग - संवेगभावणा दु णेया।।471।।

अरिहंत - सूरि - बहुसुद - पवयण - भत्ती मग्गपहावणा तह।
सत्तीइ चागो तवो, साहुसमाहि-वेज्जावच्चं।।472।।

खणलवपडिबोहणदा, ओग्गहिदा केण वि आइरियेणं।
आवसियापरिहाणी, पाणरूव - वच्छलभावणा।।473।।

दर्शनविशुद्धि, विनयसंपन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग, संवेग भावना, शक्तितस्त्याग, शक्तितस्तप, साधु समाधि, वैय्यावृत्ति, अरिहंत भक्ति, आचार्य भक्ति, बहुश्रुत भक्ति, प्रवचन भक्ति, मार्ग प्रभावना, आवश्यकापरिहाणी एवं प्राणरूप वात्सल्य भावना, ये सोलहकारण भावनाएँ तीर्थंकर प्रकृति की हेतु हैं। किन्हीं आचार्य के अनुसार आचार्य भक्ति भावना के स्थान पर क्षण लव प्रतिबोधनता भावना स्वीकार की गई है।

पस्सिदुं सव्वजीवा, जस्स दिट्ठी महाविसुद्धा होज्ज।
पत्तेयं जीवो जं, परमप्पा सत्तिरूवेणं।।474।।

सुद्धदिट्ठीए कुणदि, सव्वाण उवयारं सय चिंतेदि।
कहं होदुं समत्थो, हिदे आलंबाणं जीवण॥475॥
इत्थं दंसणविसोहि-जुदो हंदि तित्थो होदुं सक्को।
दंसणविसोही इमा, हेदू वि तित्थयरपइडीइ॥476॥

क्योंकि प्रत्येक जीव शक्तिरूप से परमात्मा है अतः सभी जीवों को देखने के लिए जिसकी दृष्टि महाविशुद्ध होती है, जो शुद्ध दृष्टि से सभी का उपकार करता है, सदा चिंतन करता कि ''मैं जीवों के कल्याण में आलंबन होने में किस प्रकार समर्थ हो सकता हूँ।'' इस प्रकार दर्शन विशुद्धि भावना से युक्त जीव तीर्थंकर होने में समर्थ होता है। यह दर्शन विशुद्धि भावना भी तीर्थंकर प्रकृति का कारण है।

मोक्खद्दारो विणओ, गुणागारो दंसणवयमूलो य।
दंसण-णाण-चरिय-तव-उवयार-विणयंकरेज्जसय॥477॥

विनय मोक्ष का द्वार है, गुणों का आकर है, सम्यक्त्व व चारित्र का मूल है। अतः सदा दर्शन विनय, ज्ञान विनय, चारित्र विनय, तप विनय व उपचार विनय करनी चाहिए।

णिरदियार-सीलस्स दु, सग-सत्तीए सुपालणं अहवा।
सत्तसीलवद - पालण - मप्पहिदत्थं च सीलवदो॥478॥

अपनी शक्ति से निरतिचार शील का पालन करना अथवा आत्म हित के लिए सप्तशील व्रतों (3 गुणव्रत व 4 शिक्षाव्रत) का पालन करना शीलव्रत है।

कंखदि परमपदं जो, णिद्दोसं सीलवदं पालदि सो।
जम्हा सीलो चेयण-भुवणत्तये अमुल्ल-रयणं॥479॥

जो परमपद की आकांक्षा करता है वह निर्दोष शीलव्रत का पालन करता है क्योंकि तीनों लोकों में शील चेतना का अमूल्य रत्न है।

सुद्धीइ सगचित्तस्स, भावदि तुरियभावणं जीवो जो।
णिरंतरं दु अभिक्खण - णाणुवजोग - संजुत्तो सो।।480।।

जो जीव अपने चित्त की शुद्धिपूर्वक चौथी भावना को भाता है वह निरंतर अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग से संयुक्त है।

णाणं झाण-कारणं, दंसण-अयलदाइ वय-विमलदाइ।
स-चित्तं थिरं करिदुं, सुदभावणं सया करेज्जा।।481।।

ज्ञान, ध्यान का हेतु है। दर्शन की अचलता के लिए, व्रतों की विमलता के लिए एवं अपने चित्त को स्थिर करने के लिए सदैव श्रुतभावना करनी चाहिए।

जो को वि भव्वजीवो, कुव्वदि सययं सण्णाणब्भासं।
सो उहयमोहकम्मं, णासेदुं सक्कदि णियमादु।।482।।

जो कोई भी भव्यजीव निरंतर सम्यग्ज्ञान का अभ्यास करता है वह नियम से उभय मोहकर्म अर्थात् दर्शन मोहनीय व चारित्र मोहनीय का नाश करने में समर्थ होता है।

भावसुदणाणं परम - भोयणं अप्पस्स जिणुद्दिट्ठं दु।
अमियं व सुदसमुद्दे, जो अवगाहेदि सो णाणी।।483।।

भावश्रुत ज्ञान आत्मा का परम भोजन है, ऐसा जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहा गया है। जो अमृत के समान श्रुत रूपी समुद्र में अवगाहन करता है वह ज्ञानी है।

कसायुवसमेण होदि, चित्तस्स पवट्टी हु सुदणाणम्मि।
विसयकसायविहीणो, अघवज्जिदो णाणुवजोगी।।484।।

कषाय के उपशम से चित्त की प्रवृत्ति श्रुतज्ञान में होती है। विषय-कषाय से विहीन, पाप से रहित ही ज्ञानोपयोगी होता है।

असुहादो णिवत्तीइ, सुहपवत्तीए चित्तथिरिमाए।
णाणे उवजोगो सय, अभिक्खणणाणभावणा चिय।।485।।

अशुभ से निवृत्ति, सुख में प्रवृत्ति व चित्त में स्थिरता से सदा ज्ञान में उपयोग होता है, वह ही अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग भावना है।

धम्मे धम्मफलम्मि य, संवेग - भावणा हरिसो भावो।
भवसरीरभोयादो, विरत्तिभावो मुणेदव्वा।।486।।

धर्म व धर्म के फल में हर्ष भाव संवेग भावना है अथवा संसार, शरीर, भोगों से विरक्ति का भाव संवेग भावना जाननी चाहिए।

पोग्गलाण पज्जाया, जे के अवि दिट्ठिगोयरा अज्जं।
ते सव्वा खणधंसी, णादव्वा मेहविज्जुदोव्व।।487।।

जो कोई भी पुद्गल की पर्याय आज दृष्टिगोचर होती हैं वे सभी मेघ या बिजली के समान क्षणभंगुर जाननी चाहिए।

पडिखणे सगप्पं सय, देज्ज संबोहण-मप्पविसुद्धीइ।
सगसंबोहणं विणा, णिरट्ठं परसंबोहणं दु।।488।।

सदा आत्म विशुद्धि के लिए प्रतिक्षण अपनी आत्मा को संबोधन देना चाहिए। स्वसंबोधन के बिना परसंबोधन निरर्थक है।

सगवत्थु-सामग्गीण, धणमुद्दाणं च अण्णसंगहस्स।
परहिदत्थ-मामुयणं, चागभावणा मुणेदव्वा।।489।।

पर हित के लिए अपनी वस्तु, सामग्री, धन, मुद्रा व अन्न संग्रह का त्याग करना त्याग भावना जाननी चाहिए।

मण-वयण-सरीराणं, अवहेडणं च दुट्ठपवट्टीए।
चागभावणा णेया, सुपत्ताण चउविह-दाणं वि।।490।।

मन, वचन व शरीर की दुष्ट प्रवृत्ति का त्याग करना एवं सुपात्रों के लिए चार प्रकार का दान भी त्याग भावना जाननी चाहिए।

जिणदेव-पूयाए दु, दाणं सत्तीइ चाग-भावणा हु।
जिणधम्म-पहावणाय, णिम्माणिदुं जिणायदणाणि।।491।।

जिनेन्द्र देव की पूजा के लिए, जिनधर्म की प्रभावना के लिए व जिनायतनों के निर्माण के लिए शक्तिपूर्वक दान देना त्याग भावना है।

अहरूव-कुसक्कारं, आमुयेदुं जा सुहभावणा सा।
चागभावणा णेया, तित्थयरणामपइडिहेदू।।492।।

पाप रूप कुसंस्कारों के त्याग के लिए जो शुभ भावना है वह त्याग भावना जाननी चाहिए। वह तीर्थंकर नाम प्रकृति का हेतु है।

इच्छाणिरोहो तवो, असुहणिवत्तिरूवो मुणेदव्वो।
इंदिय-दमणं अवि सग-दव्वेसु अणासत्तभावो।।493।।

अशुभ निवृत्ति रूप इच्छाओं का निरोध तप जानना चाहिए। इंद्रियों का दमन व अपने द्रव्यों में अनासक्त भाव भी तप जानना चाहिए।

बहिरंतरभेयेणं, दुविह-तवो पत्तेयं छब्भेया।
अप्पविसुद्धीए तं करेज्जा चिय णिय-सत्तीए।।494।।

बाह्य व अंतरंग के भेद से तप दो प्रकार का है। इस बाह्य व अंतरंग तप के भी छः-छः भेद हैं। आत्म विशुद्धि के लिए अपनी शक्ति से इन्हें अवश्य करना चाहिए।

सेलोव्व भवकम्माणि, ताणि णस्सेदुं तवो दु वइरोव्व।
जम्म - मरण - रूव - भवारण्णं दहिदुं तवो अग्गी।।495।।

पहाड़ के समान भाव कर्मों को नष्ट करने के लिए तप वज्र के समान है। जन्म-मरण रूप संसार रूपी वन को जलाने के लिए तप अग्नि के समान है।

सयलसंजदासाहू, पंचमहव्वदसमिदितिगुत्तिजुदा।
इंदियविजयी कसाय-णिग्गाहगा परिसह-जयी य।।496।।

रयणत्तय-संजुत्ता, णिव्विअप्प-अप्पझाण-लीणा जे।
सुद्धप्प-रसस्सादी, होज्ज सहायगा साहणाइ।।497।।

तणं णिरोगी कुणंति, आहारोसहि - आदीहि सत्तीइ।
पिच्छि-आइ-उवयरणं, देंति समाहिभावणा ताण।।498।।

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्तियों से युक्त, इंद्रियविजयी, कषायों का निग्रह करने वाले, परिषह-जयी, रत्नत्रय से संयुक्त

निर्विकल्प आत्म ध्यान में लीन, शुद्धात्म रसास्वादी, सकल संयत जो साधु अन्य साधुओं की साधना में सहायक होते हैं, शक्तिपूर्वक आहार–औषधि आदि के द्वारा साधुओं की देह को निरोगी करते हैं, पिच्छी आदि उपकरण देते हैं उनके समाधि भावना होती है।

परकल्लाणभावणा – जुत्तो रत्तो सगप्पकल्लाणे।
समणो वा सावगो दु, तित्थयरं बंधिदुं सक्को।।499।।

परकल्याण की भावना से युक्त, स्वात्म कल्याण में रत श्रमण या श्रावक भी तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने में समर्थ होता है।

आइरिय–उवज्झाया, तवसि–सेक्ख–गिलाण–गण–कुल–संघा।
साहू दु मणोण्णा दह – विहं वेज्जावच्चं णेयं।।500।।

आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु व मनोज्ञ इन दस प्रकार के साधुओं के भेद से दस प्रकार की वैयावृत्ति जाननी चाहिए।

वा चउविहसंघेसुं, ताण साहणा – विड्ढीए करेज्ज।
भत्तीइ वेज्जावच्च – माहाराइं सया देच्चा।।501।।

अथवा चार प्रकार के संघों में उनकी साधना की वृद्धि के लिए उनको भक्तिपूर्वक आहार आदि देकर सदा वैयावृत्ति करनी चाहिए।

कफ–वाद–पित्त–जणिदा रोया जदि विज्जंते सरीरम्मि।
सुद्धोसहीहि रोयं, परिहरिय करेज्ज सेवं तो।।502।।

यदि शरीर में कफ, वात, पित्त जनित रोग विद्यमान हों तो शुद्ध औषधि के द्वारा रोग का परिहार करके सेवा करनी चाहिए।

भत्तीइ पगादीणं, अब्भंगणं दु खेद–परिहरणाय।
उण्हसीदबाहाए, वारणत्थं वेज्जावच्चं।।503।।

गर्मी–सर्दी आदि की बाधा के निवारण के लिए, खेद के परिहार के लिए भक्तिपूर्वक पैर आदि का मर्दन करना, तेलादि लगाना वैयावृत्ति है।

सण्णाण - संविड्ढीइ, विसुद्धीए दंसण - चरित्ताणं।
जिणपरंपरापोसग - आगमगंथदाणं करेज्ज॥504॥

दर्शन और चारित्र की विशुद्धि के लिए, सम्यग्ज्ञान की वृद्धि के लिए जिनपरंपरा के पोषक आगम ग्रंथों का दान करना चाहिए।

सत्तगुणपणाभूसण - सहिदं पणदूसणदियार - हीणं।
णवहाभत्तीए चउ - विहाहारं देज्ज पत्ताण॥505॥

सप्त गुण व पंच आभूषणों से सहित, पाँच दूषण व अतिचार से हीन, नवधा भक्तिपूर्वक पात्रों के लिए चार प्रकार का आहार देना चाहिए।

विग्घणिवारणत्थं च, दाएज्ज वसदिगा-उवयरणाइं।
जहाजोग्गं तव - झाण - णाण - विड्ढीए विवेगेण॥506॥

तप, ध्यान व ज्ञान की वृद्धि के लिए, विघ्न निवारण के लिए विवेकपूर्वक यथायोग्य वसतिका व उपकरणादि दान देना चाहिए।

वेज्जावच्चेण होदि, वरसंहणणं मदणोव्व सुरूवो।
तं तित्थपइडिहेदू, तम्हा करेज्ज सगसत्तीइ॥507॥

वैय्यावृत्ति से उत्कृष्ट संहनन व कामदेव के समान सुंदर रूप होता है, यह तीर्थंकर प्रकृति का हेतु है इसीलिए अपनी शक्ति के अनुसार उसे करना चाहिए।

चउघाइकम्मरहिदा, अणंतचदुट्ठय - संजुदा सय जे।
अघाइकम्मसहिदा य, णवकेवलाइ - लद्धि - जुत्ता॥508॥

ते अरिहा जगपुज्जा, पावसामगा सम्मत्त - णिमित्तं।
अदिसयपुण्णकारणं, अणंत-अप्पगुण - संजुत्ता॥509॥

तित्थयर-पइडीए वि, हेदू ताण अरिहंताण भत्ती।
सदिंदेहिं सुपुज्जा, गब्भाइ-पणकल्लाण-जुदा॥510॥

गयरायी सव्वण्हू, हिदुवदेसगा भवि-कल्लाणत्थं।
मोक्खमग्गणायगा दु, पणमामि सगगुणलद्धीए॥511॥

जो चार घातिया कर्मों से रहित हैं, अनंत चतुष्टय से संयुक्त हैं, अघातिया कर्मों से सहित व नव केवल लब्धियों से युक्त हैं, अनंत आत्म गुणों से युक्त, पापों का शमन करने वाले, सम्यक्त्व के निमित्त व अतिशय पुण्य के कारण वे अरिहंत परमेष्ठी जगपूज्य हैं। उन अरिहंतों की भक्ति तीर्थंकर प्रकृति का भी कारण है। शत इंद्रों से पूजित, गर्भादि पाँच कल्याणकों से युक्त, वीतरागी, सर्वज्ञ, भव्यों के कल्याणार्थ हित का उपदेश देने वाले, मोक्षमार्ग के नायक उन अरिहंतों को निज गुण की प्राप्ति के लिए मैं नमस्कार करता हूँ।

पंचायार - संजुदा, धम्म-तव - गुत्तित्तयेहिं सहिदा।
सडावस्सग - सहिदा दु, तहा संगह-णिग्गह - कुसला॥512॥

सव्वदोसा य दुट्ठा, णिग्गहिदुं समत्था संगरहिदा।
पिदरोव्व दु आइरिया, अस्सिं यालम्मि भयवदोव्व॥513॥

पंचाचार से युक्त, दस धर्म, तप व तीन गुप्तियों से सहित, षडावश्यकों से सहित, संग्रह-निग्रह में कुशल, सर्व दोषों व दुष्टों का निग्रह करने में समर्थ, सर्व परिग्रह से रहित, पिता के समान आचार्य इस काल में भगवान् के समान ही हैं।

सुद्ध-कुल-वंस-जुत्ता, दिढधम्मी सया साहणासीला।
उक्किट्ठबंभयारी, दक्खिणभावजुत्ताइरिया॥514॥

शुद्ध कुल व वंश से युक्त, दृढ़धर्मी, सदा साधनाशील, उत्कृष्ट ब्रह्मचारी, दक्षिण भाव से युक्त आचार्य होते हैं।

णिम्मलायारुप्पत्ति-ठिदि-विड्ढि-कारगा दु सूरि-भत्ती।
सक्कदि मोहं खयिदुं, तित्थयरपइडि-कारणं अवि॥515॥

ऐसे आचार्यों की भक्ति निर्मल आचार की उत्पत्ति, स्थिति व वृद्धि करने वाली होती है। यह आचार्य भक्ति मोह का क्षय करने में भी समर्थ होती है तथा तीर्थंकर प्रकृति का कारण भी है।

एयारसंग - चउदस - पुव्व - पाढगा पसंतुवज्झाया।
वा बेदहंग - पाढी, सुदकेवलीव मुणेदव्वा॥516॥

ग्यारह अंग व चौदह पूर्व के पाठी या द्वादशांग के पाठी प्रशांत उपाध्याय होते हैं, उन्हें श्रुतकेवली के समान जानना चाहिए।

सण्णाण - वक्खावगा, णाणमुत्ती धम्मज्झाणलीणा।
संदेहणासगा बहु - सुदवंदा सिरि - उवज्झाया।।517।।

श्री उपाध्याय परमेष्ठी सम्यग्ज्ञान के व्याख्याता, ज्ञानमूर्ति, धर्मध्यान में लीन, संदेह को विनाश करने वाले बहुश्रुतवंत होते हैं।

अण्णाणतमणासगा, पाढगा अभिक्खण - णाणुवजोगी।
ताण भत्ती तित्थयर-पइडीए बंधकारणं वि।।518।।

उपाध्याय अज्ञान रूपी अंधकार के नाशक व अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी होते हैं। उनकी भक्ति तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण भी है।

सम्मत्त-सण्णाण-सच्चरिय-जुदा समणसंजदा साहू।
अहवा जिण-सत्थं अवि, पवयण-सद्देण विआणेज्ज।।519।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र से युक्त श्रमण, संयत, साधु अथवा जिनशास्त्र भी प्रवचन शब्द से जानना चाहिए।

समणो जिणसत्थं वा, मोक्खमग्ग-णिमित्तं अणादीदो।
ताण साहु-सत्थाणं, जो कुणदि भत्तिं तिजोगेहि।।520।।

लहदे सो सिवमग्गं, तित्थ-पइडिं वि बंधिदुं समत्थो।
सहावणाणं लहिदुं, पवयणभत्तिं करेज्जा तं।।521।।

श्रमण व जिनशास्त्र (जिनागम) अनादिकाल से मोक्षमार्ग के निमित्त हैं। उन साधु व शास्त्रों की जो तीनों योगों से भक्ति करता है वह मोक्षमार्ग प्राप्त करता है एवं तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने में भी समर्थ होता है। स्वभाव ज्ञान प्राप्त करने के लिए वह प्रवचन भक्ति करनी चाहिए।

सागारणगारो वा, वयजुदो सडावस्सगलीणो जो।
सुहज्झाणे रदो सो, आराहगो आसण्णभवी।।522।।

अपने व्रतों से युक्त जो सागार या अनगार षट् आवश्यकों में लीन है, शुभ ध्यान में रत वह आराधक आसन्न भव्य है।

सवरधम्मस्स हेदू, असुहणिवत्तीइ सुहपवित्तीए।
आवस्सगं णियमेण, पालेज्ज संवरणिज्जराण॥523॥

अशुभ की निवृत्ति, शुभ में प्रवृत्ति तथा संवर व निर्जरा के लिए आवश्यकों का नियम से पालन करना चाहिए।

आवसियापरिहाणी, सिवहेदू तित्थबंधकारणं वि।
अदिसयपुण्णकारणं, चिय सुद्धप्प - संसिद्धीए॥524॥

आवश्यकापरिहाणी भावना मोक्ष का हेतु, शुद्धात्मा की सिद्धि के लिए अतिशय पुण्य का कारण तथा तीर्थंकर प्रकृति के बंध का कारण भी है।

रयणत्तयरूव-मोक्ख-मग्गो अणाइणिहणो णादव्वो।
ववहार - णिच्छयादो, दुविहो मग्गो जिणुद्दिट्ठो॥525॥

रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग अनादिनिधन जानना चाहिए। व्यवहार व निश्चय के भेद से यह मार्ग जिनेंद्र भगवान् के द्वारा दो प्रकार का कहा गया है।

पालदि देसरूवेण, सावगो समणो सयलरूवेणं।
जिणमग्गपहावणं दु, करेज्ज सव्वकल्लाणत्थं॥526॥

देश रूप से धर्म वा व्रतों का पालन श्रावक तथा सकल रूप से श्रमण करते हैं। सभी के कल्याण के लिए निश्चय से जिनमार्ग की प्रभावना करनी चाहिए।

जह छद्दव्वं अणाइ-यालादो विज्जंति विज्जिस्संति।
अप्पसुद्धीए तह हु, जिणमग्ग-पमाणिगो णेयो॥527॥

जिस प्रकार जीवादि छः द्रव्य अनादिकाल से विद्यमान हैं व अनंतकाल तक विद्यमान रहेंगे उसी प्रकार आत्म शुद्धि के लिए जिनमार्ग निश्चय से प्रमाणिक जानना चाहिए।

जिणधम्म-पहावणं दु, करिदुं सक्को सद्दिट्ठी जो सो।
उक्किट्ठ - भावणाए, तित्थयरं बंधिदुं सक्को॥528॥

जो सम्यग्दृष्टि उत्कृष्ट भावना से जिनधर्म की प्रभावना करने में समर्थ होता है वह तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने में भी समर्थ होता है।

णिच्छयधम्मे रत्तो, परमट्ठादु ववहारमोक्खपहे।
सद्दिट्ठी हवेदि जो, सो वच्छलजुदो जिणधम्मे॥529॥

जो सम्यग्दृष्टि व्यवहार मोक्षमार्ग में एवं परमार्थ से निश्चय मोक्षमार्ग में रत होता है वह जिनधर्म में वात्सल्य से युक्त कहा गया है।

पाण-वाउं व धम्मो-जीवणाय वच्छलं तह हि अयोव्व।
जस्स मणे ण वच्छलं, सो कहं होज्जा सद्दिट्ठी॥530॥

धर्म जीवन के लिए प्राण वायु के समान है तो वात्सल्य हृदय के समान जानना चाहिए। जिसके मन में वात्सल्य नहीं है वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

सम्मत्त -विसेसंगो, सद्दिट्ठिस्स वरगुणो वच्छल्लं।
तित्थयरपइडि - हेदू, दंसणविसुद्धीव जाणेज्ज॥531॥

वात्सल्य सम्यक्त्व का विशेष अंग है, सम्यग्दृष्टि का उत्कृष्ट गुण है। वात्सल्य को दर्शनविशुद्धि के समान तीर्थंकर प्रकृति का हेतु जानना चाहिए।

तित्थयरपइडि - हेदू, सगवरकल्लाणभावणाइ मया।
भणिदा विसेसभत्तीए वसुभूमिणंदं लहिदुं॥532॥

स्वपर कल्याण की भावना से, अष्टम भूमि के आनंद की प्राप्ति के लिए विशेष भक्ति से मेरे द्वारा तीर्थंकर प्रकृति के हेतु कहे गए।

स्थिति बंध

रायदोसभावेहिं, कम्माण - वग्गणा हंदि बंधंति।
अप्पपदेसेसु णियद-यालंतं ठिदिबंधो जाण॥533॥

जीव के राग-द्वेष रूप परिणामों से आत्मप्रदेशों में कर्म वर्गणाएँ नियतकाल के लिए बंध को प्राप्त होती हैं यही स्थिति बंध जानना चाहिए।

मोहं विणा घादीण, जहण्णट्ठिदी अंतोमुहुत्तं दु।
तीस-कोडा-कोडी य, सायरं वरा वेयणिज्जं॥534॥

मोहनीय कर्म के बिना घातिया कर्मों (ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय) की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त है तथा इन तीनों कर्मों व वेदनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण है।

मोहणिज्ज - कम्मस्स दु, जहण्णट्ठिदी अंतोमुहुत्तं दु।
सत्तरि - कोडाकोडी, सायरं उक्कस्सा णेया॥535॥

मोहनीय कर्म की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त तथा उत्कृष्ट स्थिति 70 कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जाननी चाहिए।

णाम - गोदाणं वरा, वीसकोडाकोडि-सायरोवमं।
जहण्ण - मट्ठमुहुत्ता, विण्णाणीहिं मुणेदव्वा॥536॥

नाम कर्म व गोत्र कर्म की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त एवं उत्कृष्ट स्थिति बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जाननी चाहिए।

आउस्स दु उक्किट्ठट्ठिदी य तेतीस - सायरोवमं दु।
अंतोमुहुत्तो तहा, जहण्णट्ठिदी मुणेदव्वा॥537॥

आयु कर्म की उत्कृष्ट स्थिति नियम से तैंतीस सागर प्रमाण तथा जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त जाननी चाहिए।

असादातियघादीण, तीसकोडाकोडी सायरं तह।
सादित्थि - मणुसदुगाण, पणरसकोडाकोडी तहा॥538॥

असाता वेदनीय, ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की नौ और अंतराय कर्म की पाँच, इन बीस प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध तीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। सातावेदनीय, स्त्रीवेद, मनुष्य गति और मनुष्यगत्यानुपूर्वी इनका उत्कृष्ट स्थिति बंध पंद्रह कोड़ाकोड़ी सागर है।

वज्जुसहणाराय - समचउरसाणं चिय उक्कस्सट्ठिदी।
दहकोडाकोडी चिय, सायरपमाणं णादव्वा॥539॥

वज्रवृषभनाराच संहनन व समचुरस्र संस्थान की उत्कृष्ट स्थिति 10 कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जाननी चाहिए।

बेदहकोडाकोडी, विदिय - संहणण - संठाणाणं तह।
चउदहकोडाकोडी, सायरं तिदियाण जाणेज्ज॥540॥

द्वितीय वज्रनाराच संहनन और न्यग्रोध परिमंडल संस्थान की उत्कृष्ट स्थिति बारह कोड़ाकोड़ी सागर तथा तृतीय नाराच संहनन और स्वाति संस्थान की उत्कृष्ट स्थिति चौदह कोड़ाकोड़ी सागर जाननी चाहिए।

सोलसकोडाकोडी, चदुत्थ - संहणण - संठाणाणं च।
पंचमाण अट्ठारस - कोडाकोडी सायरं तह॥541॥

चतुर्थ अर्धनाराच संहनन और कुब्जक संस्थान की उत्कृष्ट स्थिति सोलह कोड़ाकोड़ी सागर तथा पंचम कीलक संहनन और वामन संस्थान की उत्कृष्ट स्थिति अठारह कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है।

अंत-छट्ठम-संहणण-संठाणाणं उक्कस्सट्ठिदी दु।
वीसकोडाकोडी य, सायरपमाणं विण्णेया॥542॥

अंतिम असंप्राप्तासृपाटिका संहनन व हुण्डक संस्थान का उत्कृष्ट स्थिति बंध बीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जानना चाहिए।

अरदिसोगसंढाणं, तिरिय-णिरय-आदव-भयदुगाणं च।
तेजसोरालवेगुव्विय - दुगाण वण्णचदुत्थाण॥543॥

तस - पज्जत्त - पत्तेय - बादर - णीयुवघाद - परघादाण।
अगुरुलहु-उस्सास-इग-पणक्ख-थावर-णिम्माणाण॥544॥

अप्पसत्थगइ-अथिर-असुह-दुब्भग-दुस्सराणादेयाण।
अजसस्स हु उक्किट्ठ-ट्ठिदी वीसकोडाकोडी य॥545॥

अरति, शोक, नपुंसकवेद, तिर्यंचगति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरकगत्यानुपूर्वी, आतप, उद्योत, भय, जुगुप्सा, तैजस, कार्माण, औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, वैक्रियक शरीर, वैक्रियक अंगोपांग, वर्णचतुष्क (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण), त्रस, पर्याप्त, प्रत्येक,

बादर, नीच गोत्र, उपघात, परघात, अगुरुलघु, श्वासोच्छ्वास, एकेन्द्रिय जाति, पंचेन्द्रिय जाति, स्थावर, निर्माण, अप्रशस्त विहायोगति, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय एवं अयशःकीर्ति, इनका उत्कृष्ट स्थितिबंध बीसकोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण जानना चाहिए।

हस्सरदिपुरिसुच्च - थिर - सुह-सुहग-सुस्सरादेय-जसाणं।
पसत्थगमण - देवदुग - पइडीण दसकोडाकोडी॥546॥

हास्य, रति, पुरुषवेद, उच्चगोत्र, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यशःकीर्ति, प्रशस्त विहायोगति, देवगति व देवगत्यानुपूर्वी इनका उत्कृष्ट स्थिति बंध दस कोड़ाकोड़ी सागर जानना चाहिए।

आहारदुग - तित्थयर - पइडीणं अंतकोडाकोडी दु।
सुर - णिरयाऊणोघं, भोयभूमिजाण तिपल्लाणि॥547॥

आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग और तीर्थंकर इन तीन प्रकृतियों का स्थिति बंध अंतःकोड़ाकोड़ी अर्थात् कोड़ी से ऊपर और कोड़ाकोड़ी से नीचे इतने सागर प्रमाण है। देव व नरकायु की स्थिति ओघ के समान तथा भोगभूमिया जीवों की उत्कृष्ट आयु तीन पल्य होती है।

जहण्णेणेगसमओ, ओरालिय - वेगुव्वियाहाराण।
तेजससरीरस्स तह, णिसेग - सत्ता विआणेज्जा॥548॥
उक्कस्सेण तिपल्लं, तित्तीससायर - अंतोमुहुत्तो।
छावट्ठी सायरो य, कमेण देह-णिसेग-सत्ता॥549॥

औदारिक शरीर, वैक्रियक शरीर, आहारक शरीर तथा तैजस शरीर के निषेकों की सत्ता जघन्य से एक समय व उत्कृष्ट से देहों की निषेक सत्ता तीन पल्य, तैंतीस सागर, अंतर्मुहूर्त तथा छ्यासठ सागर जाननी चाहिए।

सत्तरकोडाकोडी - सायरो उक्कस्सेण कम्म - ठिदी।
जहण्णेण एगसमय - समहिद - एगावली णेया॥550॥

कार्माण देह की स्थिति उत्कृष्ट से सत्तर कोड़ाकोड़ी सागर व जघन्य से एक समय अधिक एक आवली जाननी चाहिए।

कम्मभूमिजाणं चिय, एयकोडिपुव्वं उक्कस्सेणं।
सण्णि-पणक्ख-पज्जत्त-जोग्गाणं होदि वरबंधो।।551।।

तिण्णिसुहाऊणि विणा, सेसाण उक्कस्स-संकिलेसेण।
उक्किट्ठ ट्ठिदिबंधो, विवरीदभावेण आऊण।।552।।

कर्मभूमिया तिर्यंच व मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु 1 कोटि पूर्व होती है। तीन शुभ आयु (देवायु, मनुष्यायु व तिर्यंचायु) के बिना शेष कर्मों का उत्कृष्ट स्थिति बंध संज्ञी, पंचेन्द्रिय पर्याप्तक योग्य जीव के ही होता है। तीन शुभायु के बिना शेष 117 प्रकृतियों का उत्कृष्ट स्थिति बंध उत्कृष्ट संक्लेश परिणामों से होता है। तीन आयु कर्मों का उससे विपरीत अर्थात् विशुद्ध परिणामों से उत्कृष्ट स्थिति बंध होता है एवं उत्कृष्ट संक्लेश से जघन्य स्थिति बंध होता है।

जहण्णठिदी णाण - चउदंसणावरणपणंतरायाणं।
संजलणलोहस्स तह, एग - एग - अंतोमुहुत्तो।।553।।

पाँच ज्ञानावरण, चार दर्शनावरण, पाँच अंतराय एवं संज्वलन लोभ की जघन्य स्थिति एक-एक अंतर्मुहूर्त होती है।

जहण्णट्ठिदी तहा दु, जसकित्ति-उच्चाण अट्ठ-मुहुत्ता।
सादावेयणीयस्स, बारस - मुहुत्ता विण्णेया।।554।।

यश:कीर्ति व उच्च गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त तथा साता वेदनीय की बारह मुहूर्त जाननी चाहिए।

दो - एग - अद्धमासं, संजलणकोहत्तयाण कमेणं।
पुरिसस्स अट्ठ - वासा, जहण्णट्ठिदी मुणेदव्वा।555।।

संज्वलन क्रोध की जघन्य स्थिति दो माह, संज्वलन मान की एक माह, संज्वलन लोभ की अर्द्धमास (15 दिन) तथा पुरुष वेद की आठ वर्ष जाननी चाहिए।

अंतोकोडाकोडी, तित्थयराहाराण जहण्णठिदी।
बंधो हवेदि खवगे, सग-सग बंधवोच्छणकाले।।556।।

तीर्थंकर और आहारकद्विक की जघन्य स्थिति अंत:कोड़ाकोड़ी सागर है। यह जघन्य स्थिति बंध क्षपक श्रेणी वाले जीवों के अपनी-अपनी बंधव्युच्छित्ति के समय में ही नियम से होता है।

अंतोमुहुत्तो कम्मभूमिज - णर - तिरियाण जहण्णठिदी।
भोयभूमिजाऊणं एग - पल्लं चिय णिद्दिट्ठा।।557।।

कर्मभूमिज मनुष्यों और तिर्यंचों की जघन्य स्थिति अंतर्मुहूर्त तथा भोगभूमिज जीवों की आयु की जघन्य स्थिति एकपल्य निर्दिष्ट की गई है।

देवणेरयाऊणं - वासदससहस्साइं णियमेणं।
जहण्णट्ठिदिबंधो य, वक्खाणिदो जिणसासणम्मि।।558।।

जिनशासन में देव व नारकियों की आयु का जघन्य स्थिति बंध नियम से दस हजार वर्ष प्रमाण कहा गया है।

वेउव्वियसडगं तह, मिच्छं विणा सेस-चउअसीदीण।
सव्वजहण्णं बंधदि, पज्जत्त - बादरो विसुद्धो।।559।।

एगिंदिओ दु सग - सग - ठिदीए य उक्कस्सपडिभागम्मि।
विण्णाणीहि सव्वदा, मुणेदव्वो जिणसमयेणं।।560।।

वैक्रियक षटक (देवगति, देवगत्यानुपूर्वी, नरकगति, नरक गत्यानुपूर्वी, वैक्रियक शरीर, वैक्रियकअंगोपांग) और मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियों के बिना शेष चौरासी प्रकृतियों की सर्व जघन्य स्थितियों को पर्याप्त-बादर यथायोग्य विशुद्ध भावों से युक्त एकेंद्रिय जीव ही बांधता है। विद्वानों को जिनागम से उसका प्रमाण त्रैराशिक विधि से भाग करने पर अपनी-अपनी स्थिति के प्रतिभाग का जो प्रमाण आवे सदा उतना जानना चाहिए।

इग-बे-ते-चदु-असण्णि-पंचिंदियाणं मिच्छवरबंधो।
इगं पणवीसं च पण्णासं सयं सायरसहस्सं।।561।।

एकेन्द्रिय जीव का मिथ्यात्व कर्म का उत्कृष्ट स्थिति बंध एक सागर, द्वीन्द्रिय जीव का पच्चीस सागर, त्रीन्द्रिय जीव का पचास सागर, चतुरिन्द्रिय जीव का सौ सागर और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव का एक हजार सागर प्रमाण है।

एगिंदियाण पल्लासंखेज्जणूणं च जहण्णबंधो।
अण्णाण पल्लसंखेज्जूणं कमेण मिच्छत्तस्स।।562।।

एकेन्द्रिय जीवों के जघन्य स्थिति बंध अपनी उत्कृष्ट स्थिति में से पल्य का असंख्यातवाँ भाग कम करने पर जो प्रमाण बाकी रहता है, उतना होता है और अन्य दो इंद्रिय, तीन, चार व असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों का अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति में से पल्य के संख्यातवें भाग कम करने पर जो प्रमाण शेष रहता है उतनी जघन्य स्थिति होती है।

कम्मेसु णिप्पज्जदि, फलदाणसत्ती कसायभावेहि।
फलदि ठिदिबंधेण सह, जहक्कमेणं अणुभागो दु।।563।।

जीव के कषाय भावों के द्वारा कर्मों में जो फल देने की शक्ति निष्पन्न होती है वह अनुभाग बंध कहलाता है। वह यथाक्रम से स्थिति बंध के साथ फलित होता है।

अनुभाग बंध

सादसुहाउणामुच्चगोद - पहुदि - सव्वसुहपइडीणं च।
विसोहीए सय होदि, उक्कस्स - अणुभागबंधो दु।।564।।

साता वेदनीय, शुभायु, शुभनाम कर्म व उच्चगोत्र इन सर्व शुभ-पुण्य रूप प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग बंध सदा विशुद्धि से होता है।

कोहाइ-कसायाणं, उवसमेण होदि विसुद्ध-भावो दु।
वा संकिलेसदाए, हाणी विसुद्धी णिद्दिट्ठा।।565।।

क्रोध आदि कषायों के उपशम से विशुद्ध भाव होता है अथवा संक्लेशता की हानि विशुद्धि कही गई है।

असाद-असुहाउ-णाम-णीयगोदादीण असुहपइडीण।
संकिलेसदाइ होदि, उक्कस्स - अणुभागबंधो दु।।566।।

असाता वेदनीय, अशुभायु, अशुभ नामकर्म व नीचगोत्र इन सभी अशुभ प्रकृतियों का उत्कृष्ट अनुभाग बंध संक्लेशता से होता है।

खोहजुत्तपरिणामा, जीवस्स दु कसायाण उदयादो।
संकिलेसभावो सो, दिग्घसंसारीण णियमेण।।567।।

यदि कषायों के उदय से जीव के क्षोभ युक्त परिणाम होते हैं तो वह संक्लेश भाव नियम से दीर्घ संसारी के होता है।

सव्वसुहपइडीणं दु, जहण्ण-बंधो संकिलेसदाए ।
विसुद्धीए असुहाण, जहण्ण - अणुभागबंधो तह।।568।।

सभी शुभ प्रकृतियों का जघन्य अनुभाग बंध संक्लेशता से होता है तथा सभी अशुभ प्रकृतियों का विशुद्धि से जघन्य अनुभाग बंध होता है।

घादीणं चिय सत्ती, वेल्लि-दारु-अट्ठि-सेल-रूवा तह।
देसघादी जाणेज्ज, दारू - अणंतिम - भागंतं।।569।।

घातिया कर्मों की शक्ति लता, दारु (काठ), अस्थि व शैल (पत्थर) के समान होती है अर्थात् लता आदिक में जैसे उत्तरोत्तर कठोरपना है वैसे ही इनके फल देने की शक्ति में भी उत्तरोत्तर अधिकाधिक तीव्रता समझना चाहिए। दारु के अनन्तवें भाग तक का शक्ति रूप अंश देशघाती जानना चाहिए।

अह दारुस्स सेस-बहु-भागादो चिय सेलभागंतं च।
सव्वघादी जाणेज्ज, जिणवरभासिदागमेणं च।।570।।

पुनः दारु के शेष बहुभाग से शैल के भाग तक शक्ति रूप अंश सर्वघाती के हैं ऐसा जिनेंद्र भगवान् द्वारा कहे गए आगम से जानना चाहिए।

सव्वपुण्णपइडीणं, च गुडखंडसक्करामियोवमा दु।
अघादिकम्मेसुं चिय, सत्ती समयेण णादव्वा।571।।

अघातिया कर्मों में सभी पुण्य प्रकृतियों की शक्ति गुड़, खांड, शर्करा और अमृत के समान जिनागम से जाननी चाहिए।

अघादिकम्मेसु णिंब-कंजीर-विस-हालाहल-सरिसा दु।
सव्वपावपइडीणं, सत्ती चिय जिणवरुद्दिट्ठा।।572।।

अघातिया कर्मों में सभी पाप प्रकृतियों की शक्ति निम्ब (नीम), कांजीर, विष और हालाहल के समान जिनेंद्र भगवान् द्वारा कही गई है।

कर्म सिद्धांत अध्ययन का माहात्म्य

जह अग्गी आलुंखदि, अरण्णं सघणं सुक्कं अइरेण।
तह कम्मसिद्धंतस्स, अज्झयणं दु तिव्व-पावं वि।।573।।

जिस प्रकार अग्नि अति शीघ्र सघन शुष्क वन को जला देती है उसी प्रकार कर्म सिद्धांत का अध्ययन भी तीव्र पाप को नष्ट कर देता है।

बहु-पुप्फ-फल-पत्तेहि, संजुत्ते जह सघण-धरणिरुहम्मि।
मक्कडो ठादि णंददि, तिप्पेदि संतिं अणुभवेदि।।574।।

सवणेण चिंतणेणं, पढणेणं चिय कम्मसिद्धंतस्स।
तह लहदि णंद-मप्पा, पुण्णरासिं संति-विसुद्धिं।।575।।

जिस प्रकार बहुत से पुष्प, फल व पत्तों से संयुक्त घने वृक्ष पर वानर ठहरता है, आनंदित होता है, संतुष्ट होता है और शांति का अनुभव करता है, उसी प्रकार कर्म सिद्धांत के सुनने से, पढ़ने से व चिंतन करने से आत्मा आनंद, शांति, विशुद्धि व पुण्य राशि को प्राप्त करती है।

सिद्धंत-अज्झयणादु, तह अणुभवदि सुगुणा चेयणाए।
जह तलं पडि गच्छंत-विगाहगो विसिट्ठाणंदं।।576।।

जिस प्रकार सागर के तल की ओर जाता हुआ गोताखोर विशिष्ट आनंद का अनुभव करता है उसी प्रकार कर्म सिद्धांत के अध्ययन से जीव चेतना के श्रेष्ठ गुणों का अनुभव करता है।

जो को वि पुरिसो तलं, पडि गच्छेदुं विभेदि सायरस्स।
सो तडम्मि पप्पोदि हु, मेत्तं खलु पासाणखंडं।।577।।

तह जो अवि भव्वुल्लो, कम्मसिद्धंतज्झयणादु विभेदि।
णो सुद्धप्पगुणं पप्पोदि मज्जित्ता सयं खलदि।।578।।

जो कोई भी पुरुष सागर के तल की ओर जाने से डरता है वह तट पर मात्र पाषाण खंड को ही प्राप्त करता है, उसी प्रकार जो भी भव्य कर्म सिद्धांत के अध्ययन से डरता है, वह शुद्धात्म गुणों को प्राप्त नहीं करता मात्र अहंकार करके पतित होता है।

जह अइ-तविदो गिम्हे, लहदे विगाहंतो जलासयम्मि।
तहेव सिद्धंतसत्थ - गूढज्झयणेण सुहसंतिं।।579।।

जिस प्रकार ग्रीष्म काल में अति तपित व्यक्ति जलाशय में अवगाहन करता हुआ शांति प्राप्त करता है उसी प्रकार सिद्धांत शास्त्र के गूढ़ अध्ययन से सुख-शांति प्राप्त करता है।

अक्कुदयेण विणा जह, अक्क-पयासो य अण्ण-धम्मो तह।
कम्मसत्थणाणेणं, विणा कम्मक्खयो असक्को।।580।।

जैसे सूर्योदय के बिना सूर्य का प्रकाश व अन्य धर्म अशक्य होते हैं उसी प्रकार कर्मशास्त्र के ज्ञान के बिना कर्म का क्षय अशक्य है।

कम्मणाणचक्केणं, पंचिदियं च अणिंदियं णाणी।
जह जयदि सगचक्केण, छक्खंडं तह चक्कवट्टी।।581।।

जैसे चक्रवर्ती अपने चक्र से षट्खंडों को जीतता है उसी प्रकार कर्म के ज्ञान रूपी चक्र से ज्ञानी पाँच इन्द्रिय व एक मन रूपी छः खंडों को जीत लेता है।

जह तह सादि-उडुम्मि य, होज्ज जल-बिंदू मुत्ता सिप्पीए।
कम्मसत्थणाणेणं, संजमसिप्पीइ परमप्पा।।582।।

जिस प्रकार स्वाति नक्षत्र में सीप में गिरी जल की बूँद मोती हो जाती है, उसी प्रकार कर्मशास्त्र के ज्ञान से संयम रूपी सीप में आत्मा परमात्मा हो जाती है।

सम्मत्ताइ-रयणेहि, विणा जीवो जह मोक्खमग्गी णो।
तह सिद्धो दव्वभाव-णोकम्मणासेण विणा णो॥583॥

जैसे सम्यक्त्व आदि रत्नों के बिना जीव मोक्षमार्गी नहीं होता उसी प्रकार द्रव्य कर्म, भाव कर्म व नो कर्म नाश किए बिना जीव सिद्ध नहीं होता।

जह वीयराय-देवो, आगमो मुणी सम्मत्त-णिमित्तं।
कम्मसिद्धंत-णाणं, कम्मक्खयिदुं तह णिमित्तं॥584॥

जिस प्रकार वीतरागी देव, आगम व निर्ग्रंथ मुनि सम्यक्त्व के निमित्त हैं उसी प्रकार कर्म सिद्धांत का ज्ञान, कर्म क्षय करने के लिए निमित्त हैं।

खयंति सव्वकम्माणि, कम्मसत्थणाण-अग्गिणा णियमा।
सुक्कज्झाणजालाइ, सुक्कवंसुप्पण्ण-अग्गीव॥585॥

जिस प्रकार सूखे बाँस के वृक्षों से उत्पन्न अग्नि समस्त वन को नष्ट कर देती है उसी प्रकार कर्मशास्त्र के ज्ञान रूपी अग्नि व शुक्ल ध्यान की ज्वाला से नियम से सर्व कर्म नष्ट हो जाते हैं।

कम्मसहावणाणेण, विणा विरज्जिदुं भव-तण-भोयादु।
जीवो ण सक्कदि को वि, तं पढदु जाणदु सद्धाए॥586॥

कर्म स्वभाव के ज्ञान के बिना जीव संसार, शरीर, भोग से विरक्त होने में समर्थ नहीं होता इसलिए श्रद्धा से उसे पढ़ना चाहिए व जानना चाहिए।

सिद्धंत-सत्थ-पढणं, वेरग्ग-संजम-तव-झाणाणं च।
विड्ढीए वर - हेदू, असंखेज्जगुणिदणिज्जराइ॥587॥

सिद्धान्त शास्त्रों का पठन वैराग्य, संयम, तप व ध्यान की वृद्धि तथा असंख्यातगुणित निर्जरा का उत्कृष्ट हेतु है।

अंतिम मंलाचरण

पण्णास-लक्ख-कोडी-सायर-पच्छा उसहे मोक्खगदे।
होज्ज धम्मपवट्टगो, जो अजियणाहं णमामि तं।।588।।

जो श्री ऋषभनाथ स्वामी के मोक्ष जाने के पचास लाख करोड़ सागर पश्चात् धर्म प्रवर्तक हुए उन श्री अजितनाथ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

वीरसासणयालम्मि, रयणत्तयं धारेमि सत्तीए।
सगुणसासणं लहिदुं, संपइ समयणायगं थुवमि।।589।।

श्री महावीर स्वामी के शासनकाल में शक्तिपूर्वक रत्नत्रय को धारण करता हूँ। स्वगुण शासन प्राप्त करने के लिए मैं वर्तमान शासन नायक की स्तुति करता हूँ।

कम्मसहावो गंथो, णिग्गदो सव्वण्हुस्स वाणीए।
तस्स वाणिं वंदित्तु, जिणा केवली परियंदामि।।590।।

यह 'कर्मस्वभाव' ग्रंथ श्री सर्वज्ञ देव वाणी से निर्गत है। उन जिनेंद्र वाणी की वंदना कर केवली जिनों को नमस्कार करता हूँ।

चरियचक्कि - संतिसिंधु - माइरिय - पायसायरं तवस्सिं।
अज्झप्पजोगिं च जयकित्तिं पणिवयामि भत्तीइ।।591।।

चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर जी, महातपस्वी आचार्य श्री पायसागर जी व अध्यात्मयोगी आचार्य श्री जयकीर्ति जी को भक्ति से प्रणाम करता हूँ।

भारदगोरवं देस - भूसणं आइरियं परियंदामि।
भत्तीइ - अणुरायेण, णासेदुं सया सगपावं।।592।।

भारत गौरव आचार्य श्री देशभूषण जी महाराज की भक्ति के अनुराग से सदा स्तुति करता हूँ।

सिद्धंतचक्कवट्टिं, रट्ठसंतं सेदपिच्छाइरियं।
मम गुरुविज्जाणंदं, तिभत्तीइ पणमामि पुण-पुण।।593।।

अपने गुरु सिद्धांत चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत, श्वेतपिच्छाचार्य श्री विद्यानंद जी मुनिराज को त्रिभक्ति से पुनः-पुनः प्रणाम करता हूँ।

ग्रंथ हेतु

असुहजोग-णिवट्टीइ, सुहजोग-पवत्तीए विरइदो दु।
संवर-णिज्जरा-मोक्ख-णिमित्त-मिमो कम्मसहावो।।594।।

अशुभ योगों की निवृत्ति, शुभ योगों की प्रवृत्ति, संवर, निर्जरा व मोक्ष के निमित्त यह कर्म स्वभाव नामक ग्रंथ रचा गया।

सिद्धंत महागंथं, पुव्वाइरिय-परंपराइ पढीअ।
धवलं जयधवलादिं, सगुरुमुहेण पुव्वपुण्णेण।।595।।

पूर्व पुण्य से स्वगुरु के मुख से पूर्वाचार्यों की परंपरा से धवला, जयधवला आदि सिद्धांत महाग्रंथों का अध्ययन किया।

ग्रंथ प्रशस्ति

दव्व-गदी-परमेट्ठी-परमप्पा वीरणिव्वाणद्धम्मि।
माघसिदपंचमीए, गुरुवासरम्मि य पुण्णाहे।।596।।
रेवदीइ णक्खत्ते, सोरिपुर-णेमिजिण-जम्मभूमीइ।
आइरियवसुणंदिणा, कम्मसहावो इमो पुण्णो।।597।।

द्रव्य (6), गति (4), परमेष्ठी (5), परमात्मा (2), अंकानां वामतो गतिः वीर निर्वाण संवत् 2546, शुभ दिवस माघ शुक्ल पंचमी गुरुवार रेवती नक्षत्र में श्री नेमिनाथ प्रभु की जन्म भूमि शौरिपुर में आचार्य श्री वसुनंदी मुनि के द्वारा यह कर्म स्वभाव नामक ग्रंथ पूर्ण हुआ।

।। गंथिमो पुण्णो ।।

परम पूज्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आचार्य श्री 108
वसुनंदी जी मुनिराज द्वारा
रचित व संपादित साहित्य

मौलिक कृतियाँ

प्राकृत साहित्य

1. प्राकृत वाणी भाग-1, 2, 3
2. अहिंसगाहारो (अहिंसक आहार)
3. अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
4. अणुवेक्खा-सारो (अनुप्रेक्षा सार)
5. जिणवर-थोत्तं (जिनवर स्तोत्र)
6. जदि-किदि-कम्मं (यति कृतिकर्म)
7. णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
8. णिग्गंथ-थुदी (निर्ग्रन्थ स्तुति)
9. तच्चसारो (तत्त्व सार)
10. धम्म-सुत्तं (धर्म सूत्र)
11. रट्ठ-संति-महाजण्णो (राष्ट्र शांति महायज्ञ)
12. सुद्धप्पा (शुद्धात्मा)
13. अप्पणिब्भर भारदो (आत्मनिर्भर भारत)
14. विज्जा-वसु-सावयायारो (विद्या वसु श्रावकाचार)
15. अप्प-विहवो (आत्म वैभव)
16. अट्ठंग जोगो (अष्टांग योग)
17. णमोयार महप्पुरो (णमोकार माहात्म्य)
18. मूल-वण्णो (मूल वर्ण)
19. मंगल-सुत्तं (मंगल सूत्र)
20. विस्स-धम्मो (विश्व धर्म)
21. विस्स-पुज्जो-दियंबरो (विश्व पूज्य दिगम्बर)
22. समवसरण सोहा (समवशरण शोभा)
23. वयण-पमाणत्तं (वचन प्रमाणत्व)
24. अप्पसत्ती (आत्म शक्ति)
25. कला-विण्णाणं (कला विज्ञान)
26. को विवेगी (विवेकी कौन)
27. पुण्णासव-णिलयो (पुण्यास्रव निलय)
28. तित्थयर-णामत्थुदी (तीर्थंकर नाम स्तुति)
29. रयणकंडो (सूक्ति कोश)
30. धम्म-सुत्ति-संगहो (धर्म सूक्ति संग्रह)
31. कम्म-सहावो (कर्म स्वभाव)
32. खवगराय सिरोमणी (क्षपकराज शिरोमणि)
33. सिरि सीयलणाह चरियं (श्री शीतलनाथ चरित्र)
34. अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)
35. समणायारो (श्रमणाचार)

भावार्थ

1. अज्ज-सक्किदी (आर्य संस्कृति)
2. णिग्गंथ-थुदि (निर्ग्रंथ स्तुति)
3. तच्च-सारो (तत्त्वसार)
4. रट्ठसंति-महाजण्णो (राष्ट्रशांति महायज्ञ)
5. णंदिणंद-सुत्तं (नंदीनंद सूत्र)
6. अज्झप्प-सुत्ताणि (अध्यात्म सूत्र)

टीका ग्रंथ

1. प्रमेया टीका-रत्नमाला (संस्कृत)
2. वसुधा टीका-द्रव्यसंग्रह (संस्कृत)
3. नय प्रबोधिनी-आलाप पद्धति (हिंदी)

इंग्लिश साहित्य

Inspirational Tales Part- 1 & 2

वाचना साहित्य

1. मुक्ति का वाग्दान (इष्टोपदेश)
2. बोधि वृक्ष (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका)
3. शिवपथ का रथ (सामायिक पाठ)
4. स्वात्मोपलब्धि (समाधि तंत्र)

प्रवचन साहित्य

1. आईना मेरे देश का
2. उत्तम क्षमा धर्म (आत्मा का ए.सी. रूम)
3. उत्तम आर्जव धर्म (रंचक दगा बहुत दु:खदानी)
4. उत्तम मार्दव धर्म (मान महाविष रूप)
5. उत्तम शौच धर्म (लोभ पाप का बाप बखाना)
6. उत्तम सत्य धर्म (सतवादी जग में सुखी)
7. उत्तम संयम धर्म (जिस बिना नहिं जिनराज सीझे)
8. उत्तम तप धर्म (तप चाहे सुरराय)
9. उत्तम त्याग धर्म (निज हाथ दीजे साथ लीजे)
10. उत्तम आकिंचन धर्म (परिग्रह चिंता दु:ख ही मानो)
11. उत्तम ब्रह्मचर्य धर्म (चेतना का भोग)
12. खुशी के आँसू
13. खोज क्यों रोज-रोज
14. गुरुत्तं भाग 1-16
15. चूको मत
16. जय बजरंगबली
17. जीवन का सहारा
18. ठहरो! ऐसे चलो
19. तैयारी जीत की
20. दशामृत
21. धर्म की महिमा
22. ना मिटना बुरा है न पिटना
23. नारी का धवल पक्ष
24. शायद यही सच है
25. श्रुत निर्झरी
26. सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य की शौर्य गाथा
27. सीप का मोती (महावीर जयंती)
28. स्वाती की बूँद

हिंदी गद्य रचना

1. अन्तर्यात्रा
2. अच्छी बातें
3. आज का निर्णय
4. आ जाओ प्रकृति की गोद में
5. आधुनिक समस्यायें प्रमाणिक समाधान
6. आहारदान
7. एक हजार आठ
8. कलम पट्टी बुद्धिका
9. गागर में सागर
10. गुरु कृपा
11. गुरुवर तेरा साथ
12. जिन सिद्धांत महोदधि
13. डॉक्टरों से मुक्ति
14. दान के अचिन्त्य प्रभाव
15. धर्म बोध संस्कार (भाग 1-4)
16. धर्म संस्कार (भाग 1-2)
17. निज अवलोकन
18. वसु विचार
19. वसुनन्दी उवाच
20. मीठे प्रवचन (भाग 1-6)
21. रोहिणी व्रत कथा
22. स्वप्न विचार
23. सद्गुरु की सीख
24. सफलता के सूत्र
25. सर्वोदयी नैतिक धर्म
26. संस्कारादित्य
27. हमारे आदर्श

हिंदी काव्य रचना

1. अक्षरातीत
2. कल्याणी
3. चैन की जिंदगी
4. ना मैं चुप हूँ ना गाता हूँ
5. मुक्ति दूत के मुक्तक
6. हाइकू
7. हीरों का खजाना
8. संस्कार वाटिका

विधान रचना

1. कल्याण मंदिर विधान
2. कलिकुण्ड पार्श्वनाथ विधान
3. चौसठऋद्धि विधान
4. णमोकार महार्चना
5. दुःखों से मुक्ति (बृहद् सहस्रनाम महार्चना)
6. यागमंडल विधान
7. समवशरण महार्चना
8. श्री नंदीश्वर विधान
9. श्री सम्मेदशिखर विधान
10. श्री अजितनाथ विधान
11. श्री संभवनाथ विधान
12. श्री पद्मप्रभ विधान
13. श्री चंद्रप्रभ विधान (देहरा तिजारा)
14. श्री चंद्रप्रभ विधान
15. श्री पुष्पदंत विधान
16. श्री शांतिनाथ विधान
17. श्री मुनिसुव्रतनाथ विधान
18. श्री नेमिनाथ विधान
19. श्री महावीर विधान
20. श्री जम्बूस्वामी विधान
21. श्री भक्तामर विधान
22. श्री सर्वतोभद्र महार्चना

संपादित कृतियाँ (संस्कृत प्राकृत साहित्य

1. आराधना सार (श्रीमद्देवसेनाचार्य जी)
2. आराधना समुच्चय (श्री रविचन्द्राचार्य जी)
3. आध्यात्म तरंगिणी (आचार्य सोमदेव सूरी जी)
4. कर्म विपाक (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5. कर्म प्रकृति (सिद्धांत चक्रवर्ती आ. श्री अभयचंद्र जी)
6. गुणरत्नाकर (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
7. चार श्रावकाचार संग्रह
8. जिनकल्पि सूत्र (श्री प्रभाचंद्राचार्य जी)
9. जिन श्रमण भारती (संकलन-भक्ति, स्तुति, ग्रंथादि)
10. जिन सहस्रनाम स्त्रोत
11. तत्त्वार्थ सार (श्री मदमृताचन्द्राचार्य सूरि)
12. तत्त्वार्थस्य संसिद्धि
13. तत्त्वार्थ सूत्र (आ. श्री उमास्वामी जी)
14. तत्त्वज्ञान तरंगिणी (श्री मद्भट्टारक ज्ञानभूषण जी)
15. तच्च वियारो सारो (आ. श्री वसुनंदी जी)
16. तत्व भावना (आ. श्री अमितगति जी)
17. धर्म रत्नाकर (श्री जयसेनाचार्य जी)
18. धम्म रसायण (आ. श्री पद्मनंदी स्वामी जी)
19. ध्यान सूत्राणि (श्री माधनंदी सूरी)
20. नीतिसार समुच्चय (आ. श्री इंद्रनंदी स्वामी जी)
21. पंच विंशतिका (आ. श्री पद्मनंदी जी)
22. प्रकृति समुत्कीर्तन (सिद्धांत चक्रवर्ती श्री नेमीचंद्राचार्य जी)
23 पंचरत्न
24. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय (आ. श्री अमृतचंद्र स्वामी जी)
25. मरणकण्डिका (आ. श्री अमितगति जी)
26. भगवती आराधना (आ. श्री शिवकोटी जी स्वामी)
27. भावत्रयफलप्रदर्शी (आ. श्री कुंथुसागर जी)
28. मूलाचार प्रदीप (आ. श्री सकलकीर्ति स्वामी जी)
29. योगामृत (भाग 1-2) (मुनि श्रीबालचंद्र जी)
30. योगसार (भाग 1, 2) (मुनि श्री बालचंद्र जी)
31. रयणसार (आ. श्री कुंदकुंद स्वामी)
32. वसुऋद्धि
    - रत्नमाला (आ. श्री शिवकोटि स्वामी जी)
    - पूज्यपाद श्रावकाचार (आ. श्री पूज्यपाद जी)
    - लघु द्रव्य संग्रह (आ. श्री नेमीचंद्र स्वामी जी)
    - अर्हत प्रवचनम् (आ. श्री प्रभाचंद्र स्वामी जी)
    - स्वरूप संबोधन (आ. श्री अकलंक देव जी)
    - इष्टोपदेश (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
    - वैराग्यमणि माला (आ. श्री विशाल कीर्ति जी)
    - ज्ञानांकुश (आ. श्री योगीन्द्र देव)
33. सुभाषित रत्न संदोह (आ. श्री अमितगति स्वामी जी)
34. सिन्दूर प्रकरण (आ. श्री सोमदेव स्वामी जी)
35. समाधि तंत्र (आ. श्री पूज्यपाद स्वामी जी)
36. समाधि सार (आ. श्री समंतभद्र स्वामी जी)
37. सार समुच्चय (आ. श्री कुलभद्र स्वामी जी)
38. विषापहार स्तोत्र (महाकवि धनंजय जी)

प्रथमानुयोग साहित्य

1. अमरसेन चरित्र (कविवर माणिक्कराज जी)
2. आराधना कथा कोष (ब्र. श्री नेमीदत्त जी) (भाग 1-2-3)
3. करकण्डु चरित्र (मुनि श्री कनकामर जी)
4. कोटिभट श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
5. गौतम स्वामी चारित्र (मण्डलाचार्य श्री धर्मचंद्र जी)
6. चारूदत्त चरित्र (ब्र. श्री नेमीदत्त जी)
7. चित्रसेन पद्मावती चरित्र (पं. पूर्णमल्ल जी)
8. चेलना चारित्र
9. चंद्रप्रभ चरित्र
10. चौबीसी पुराण
11. जिनदत्त चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
12. त्रिवेणी (संग्रह ग्रंथ)
13. देशभूषण कुलभूषण चरित्र
14. धर्मामृत (भाग 1-2) (श्री नयसेनाचार्य जी)
15. धन्यकुमार चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
16. नागकुमार चरित्र (आ. श्री मल्लिषेण जी)
17. नंगानंग कुमार चरित्र (श्रीमान् देवदत्त)
18. प्रभंजन चरित्र (कविवर ब्रह्मराय)
19. पाण्डव पुराण (श्री मदाचार्य शुभचंद्र देव)
20. पार्श्वनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
21. पुण्याश्रव कथा कोष (भाग 1-2) (श्री रामचंद्र मुमुक्षु)
22. पुराण सार संग्रह (भाग 1-2) (आ. श्री दामनंदी जी)
23. भरतेश वैभव (कवि रत्नाकर)
24. भद्रबाहु चरित्र
25. मल्लिनाथ पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
26. महीपाल चरित्र (कविवर श्री चारित्र भूषण)
27. महापुराण (भाग 1-2)
28. महावीर पुराण (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
29. मौनव्रत कथा (आ. श्री श्रीचंद्र स्वामी जी)
30. यशोधर चरित्र
31. रामचरित्र (भाग 1-2) (आ. श्री सोमदेव स्वामी)
32. रोहिणी व्रत कथा
33. व्रत कथा संग्रह
34. वरांग चरित्र (आ. श्री जटासिंह नंदी)
35. विमलनाथ पुराण (श्री ब्रह्मचारीश्वर कृष्णदास जी)
36. वीर वर्धमान चरित्र
37. श्रेणिक चरित्र
38. श्रीपाल चरित्र (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
39. श्री जम्बूस्वामी जी चरित्र (श्री वीर कवि)
40. शांतिनाथ पुराण (भाग 1-2) (कवि असग जी)
41. सप्तव्यसन चरित्र (आ. श्री सोमकीर्ति भट्टारक)
42. सम्यक्त्व कौमुदी
43. सती मनोरमा
44. सीता चरित्र (श्री दयाचंद गोलीय)
45. सुरसुंदरी चरित्र
46. सुलोचना चरित्र
47. सुकुमाल चरित्र
48. सुशीला उपन्यास
49. सुदर्शन चरित्र (पं. गोपालदास बैरया)
50. सुभौम चरित्र
51. हनुमान चरित्र
52. क्षत्र चूड़ामणि (जीवंधर चरित्र)

संपादित हिंदी साहित्य

1. अरिष्ट निवारक त्रय विधान
    - नवग्रह विधान
    - वास्तु निवारण
    - मृत्युंजय (पं. आशाधर जी कृत)
2. श्री जिनसहस्त्रनाम एवं पंचपरमेष्ठी विधान
3. श्री जिनसहस्त्रानाम विधान (लघु) आदि एक नाम अनेक
4. शाश्वत शांतिनाथ ऋद्धि विधान
    - भक्तामर विधान (आ. मानतुंग स्वामी जी (मूल))
    - शांतिनाथ विधान (पं. ताराचंद्र जी)
    - सम्मेदशिखर विधान (पं. जवाहर दास जी)
5. कुरल काव्य (संत तिरुवल्लुवर)
6. तत्त्वोपदेश (छहढ़ाला) (पुं. प्रवर दौलतराम जी)
7. दिव्य लक्ष्य (संकलन-हिंदी पाठ, स्तुति आदि)
8. धर्म प्रश्नोत्तर (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
9. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (आ. श्री सकलकीर्ति जी)
10. भक्तिसागर (चौबीसी चालीसा संग्रह)
11. विद्यानंद उवाच (आ. श्री विद्यानंद जी मुनिराज)
12. सुख का सागर (चौबीसी चालीसा)
13. संसार का अंत
14. स्वास्थ्य बोधामृत

गुरु पद विनयांजली साहित्य

1. अक्षर शिल्पी (मुनि शिवानंद)
2. पगवंदन (मुनि शिवानंद प्रशमानंद)
3. वसुनंदी प्रश्नोत्तरी (मुनि जिनानंद, ऐ. विज्ञान सागर)
4. दृष्टि दृश्यों के पार (आ. श्री वर्धस्वनंदनी, वर्चस्वनंदनी)
5. स्मृति पटल से भाग 1-2 (आ. श्री वर्धस्वनंदनी)
6. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी (ऐलक विज्ञान सागर)
7. गुरु आस्था (ऐलक विज्ञान सागर)
8. परिचय के गवाक्ष में (ऐलक विज्ञान सागर)
9. स्वर्णोदय (ऐलक विज्ञान सागर)
10. स्वर्ण जन्मजयंती महोत्सव (ऐलक विज्ञान सागर)
11. हस्ताक्षर (ऐलक विज्ञान सागर)
12. वसु सुबंध (महाकाव्य) (प्रो. डॉ. उदयचंद्र जी जैन)
13. समझाया रविन्दु न माना (सचिन जैन 'निकुंज')